ISSN : 2321-3922
अप्रैल – 2022
RNI-BIHHIN05394
वर्ष – 7 अंक–28

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी–मार्च – 2022
प्रकाशन : 27 जनवरी 2013

श्री दयानन्द जायसवाल
संस्थापक–सह–प्रधान संपादक

डॉ. विजय कुमार सिंह
संयोजक

श्रीमती अनिता जायसवाल
संरक्षक

डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
सम्पादक मंडल

अश्विनी प्रजावंशी
सम्पादक मंडल

श्रीमती छाया पाण्डेय
संस्थापक सदस्य

श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
संस्थापक सदस्य

कार्यालय प्रभारी

बिरजू कुमार
भागलपुर
7004435995

सुमित भारती
कोलकाता
8757689138

सौरभ भारती
दिल्ली
8699170450

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक :
श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं
समस्त व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
वर्ष–7, अंक–28

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

RNI No. : BIHHIN05394/2015
ISSN - 2321-3922
अप्रैल– जून–2022

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतर्राष्ट्रीय स्तर की हिंदी त्रैमासिक है जो वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों के पाठक सहित भारत के लगभग सभी शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई 2022 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ, कोरियर या डाक से संपादक के पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com
Mob.: 9931240303

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303

नोट : कृपया अपनी रचनाएँ kurtidev -010 में ही ई मेल से भेजें अन्यथा स्वीकृत नहीं होगी।

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	05
समीक्षा	बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास : संक्षिप्त अनुशीलन	डॉ. पशुपतिनाथ उपाध्याय	06
समीक्षा	बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास : एक परिचय	मनोरंजन सहाय सक्सेना	08
दोहे	फागुन के दोहे	प्रेमचन्द पाण्डेय	09
समीक्षा	प्रेमचन्द की उपन्यास–कला द्विज की अनुपम कृति	डॉ. निरुपमा राय	10
समीक्षा	तीस पार की नदियाँ–सत्या शर्मा	डॉ. अशोक प्रियदर्शी	13
ग़ज़लें		रमेश मनोहरा	14
समीक्षा	कुहासा मार डालेगा : हिन्दी ग़ज़ल में प्रतिरोध की अनुगूंज	हरेराम समीप	15
कविता	तोड़कर कारा समय की	मनोरंजन सहाय	17
समीक्षा	उमेदा एक योद्धा नर्तकी : एक दस्तावेजी उपन्यास	दीपक गिरकर	18
समीक्षा	ज्ञानरंजन की कहानियों का यथार्थ	डॉ. संजय सिंह	19
समीक्षा	औरत की जानिब: एक औरत का सफर	डॉ. अरुण कुमार वर्मा	21
गीतें	अपाहिज हो गया चिंतन, हुआ घोषित वो नालायक	राजेश जैन राही	23
कविता	एक नई चेतना	सच्चिदानंद किरण	23
आलेख	भारतीय पत्रकारिता का अतीत और वर्तमान	डॉ. अमर सिंह बधान	24
लघुकथाएँ	लेबर, हल्के आभूषण	केदारनाथ सविता	27
आलेख	सुभाषचन्द्र बोस की मौत का राज आखिर कब खुलेगा	रंजना मिश्रा	28
ग़ज़लें	कहीं भी मैं चली जाऊँ, तोड़कर संवाद सारे	डॉ.अंजना वर्मा	29
आलेख	बहुरुपिया : अभिनय की लोक परंपरा	अश्विनी कुमार आलोक	30
आलेख	सामाजिक संचेतना के संवाहक–बख्शीजी	डॉ. नलिनी श्रीवास्तव शिवायन	31
कविताएँ	कोरोना और मतदान, साजन के साथ...	नेतलाल यादव	32
जीवनी साहित्य	आजादी की बलिवेदी पर नासिक की तेजस्विनी शलाकाएँ	डॉ. विद्याकेशव चिटको	33
ग़ज़लें		डॉ. रवीन्द्र 'रवि'	35
जीवनी साहित्य	'बहुआयामी भावना–संसार के कवि : मन्नालाल अमंद	धर्मेन्द्र कुशवाहा	36
लघुकथाएँ	परिवर्तन, मछुआरे	डॉ. क्षमा सिसोदिया	37
आलेख	सिनेमा और साहित्य एक अवलोकन	डॉ. रणजीत कुमार सिन्हा	38
कहानी	अनसुलझा प्रश्न	शुभदा मिश्रा	40
कहानी	विद्यारम्भ	श्रीनाथ	45
कहानी	माँ	देवेन्द्र कुमार मिश्रा	49
कविताएँ	शहनाई, कायाप्रवेश	डॉ. शहंशाह आलम	50
कहानी	कामयाबी	डॉ. मो. परवेज	51
कहानी	मर्यादा का मान	मीनाक्षी छाजेड़	52

हुँकारों से महलों की नींव उखड़ जाती
साँसों के बल से ताज हवा में उड़ता है
जनता की रोके राह, समय में ताव कहाँ?
वह जिधर चाहती, काल उधर ही मुड़ता है

अब्दों, शताब्दियों, सहस्राब्द का अंधकार
बीता; गवाक्ष अंबर के दहके जाते हैं
यह और नहीं कोई, जनता के स्वप्न अजय
चीरते तिमिर का वक्ष उमड़ते जाते हैं।

सबसे विराट जनतंत्र जगत का आ पहुँचा
तैंतीस कोटि हित सिंहासन तय करो
अभिषेक आज राजा का नहीं, प्रजा का है
तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो।

आरती लिये तू किसे ढूँढ़ता है मूरख
मंदिरों, राज प्रासादों में, तहखानों में?
देवता कहीं सड़कों पर गिट्टी तोड़ रहे
देवता मिलेंगे खेतों में, खलिहानों में।

फावड़े और हल राजदण्ड बनने को हैं
धूसरता सोने से शृंगार सजाती है।
दो राह, समय के रथ का घर्घर नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।

डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर'

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गयी हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित एवं सुंदर हो और जिसमें दिल और दिमाग का असर डालने का गुण हो। साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है, जब उसमें जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हो। यूँ तो साहित्य की बहुत–सी परिभाषाएँ दी गई हैं, पर यह एक प्रकार से जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबंध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के माध्यम से हमारे जीवन की आलोचना और उसकी व्याख्या व्यक्त करता हो। निःसंदेह काव्य और साहित्य का उद्देश्य ही हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाना है, किन्तु शृंगारिक मनोभाव मानवजीवन का एकमात्र अंश ही नहीं है, क्योंकि साहित्य अपने काल का प्रतिबिम्ब होता है, जो भाव और विचार व्यक्ति के हृदय को स्पंदित करते हैं। यदि साहित्य प्रतिकूलता या नैराश्य में डूबा हो अथवा मात्र शृंगारिक भावों का प्रतिबिम्ब बन गया हो, तो समझ लें वह ह्रास के पंजे में फँस चुकी है। हमारा साहित्य उद्योग तथा संघर्ष का बल हो अथवा ऊँचे लक्ष्यों की ओर इशारा करे, ताकि हमारी दृष्टि दुनिया को देखने– समझने की शक्ति जाग्रत कर सके। यह बात सच है कि सौंदर्य और प्रेम का जिम्मा भी साहित्य ने ही लिया है, ऐसे में साहित्यकार की अनुभूति जितनी ही जाग्रत और सक्रिय होती है, उसकी रचना उतनी ही प्रभावकारी होती है, जिसकी अदालत समाज होता है।

निःसंदेह कला का उद्देश्य सौंदर्य वृत्ति की पुष्टि करना है और वही हमारे आनंद की कुंजी है। जब कोई साहित्यकार मूर्ति बनाता है, तो उसकी वास्तविकता को ध्यान में रखकर सजीवता और भावव्यंजकता को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करता है, उसके मनोविज्ञान का अध्ययन करता है और कोशिश करता है कि दर्शक की मनोवृत्ति और उसका दृष्टिकोण रचना की विस्तृति से जागृत हों, उसकी मानसिक परिधि विस्तृत हों तथा विचारों की दृष्टि इतनी सूक्ष्म, इतनी गहरी और इतनी विस्तृत हों कि उन्हें आध्यात्मिक आनंद और बल मिले। क्योंकि अच्छी अवस्था आने की प्रेरणा हर व्यक्ति में मौजूद रहती है, जरूरत है उसके प्रेरक भाव को जगाने की। अच्छी रचना या अच्छे दृश्य को देखकर हमारा अंतःकरण क्यों खिल उठता है, इसलिए कि उसमें समानुपाती मोहकता हृदय और मस्तिष्क को सक्रिय बनाने की कला दर्शाती है। फूलों को देखकर हमें इसलिए आनंद होता है कि उनसे फलों या सुगंधों की आशा होती है। प्रकृति से हमें अपने जीवन का सुर मिलाकर चलने में इसलिए सुख मिलता है कि उससे हमारा जीवन विकसित और पुष्ट होता है।

साहित्य की व्यापकता किसी एक व्यक्ति विशेष तक सीमित नहीं होती, बल्कि उसमें मानव की प्रकृति का आभास मिलता है, जो किसी व्यक्ति एवं राष्ट्र के संकुचित बंधन से मुक्त हो। ऐसे साहित्य द्वारा ही अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास किया जा सकता है। साहित्य ही है जो जाति, धर्म और देश की दीवारों के पार जाकर अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आधुनिक युग वैश्वीकरण का युग है, इसलिए हमें अपने विचार में परिवर्तन लाना होगा। हमें राष्ट्रीय विचार के स्थान पर अंतर्राष्ट्रीय विचार को विकसित करना होगा। हमें यह चिंतन विकसित करना होगा कि परिवार से बृहद् समाज है, समाज से बृहद् राष्ट्र है और राष्ट्र से बृहद् स्वरूप विश्व का है। इसलिए अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना को बढ़ावा देने के लिए अंतर्राष्ट्रीय समझ और सोच जरूरी है। हम विश्व संस्कृति और विरासत से अलग होकर जीवन को गतिशीलता नहीं प्रदान कर सकते। अगर हम विलग हो गये तो संपूर्ण विश्व से कट जाएँगे। हमारी संस्कृति विश्व संस्कृति से जुड़ाव रखती है। विश्व की संस्कृति यूरोभारतीय संस्कृति है, क्योंकि यह यूरोप से चलकर एशिया के मध्य तक आई है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना एक अत्यन्त आवश्यक अवधारणा है। नित–नूतन खोज एवं आविष्कारों ने राष्ट्रों के बीच की दार्शनिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दशा को चरमराकर रख दी है। यही कारण है कि राष्ट्रों के बीच तनाव उत्पन्न होता है। इस तनाव को कम करने तथा वैश्विक शांति स्थापित करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि राष्ट्रों में एक दूसरे के प्रति सद्भावना तथा सहयोग की भावना जागृत की जाए। इसमें हमारी विश्वबंधुत्व की भावना अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना को आधार प्रदान करती है और हमारा साहित्य और साहित्यकार की यह संकल्पना इस बात की ओर संकेत करती है कि संसार के प्रत्येक मनुष्य में भाईचारे का संबंध हो तथा विश्व के समस्त राष्ट्र विश्वग्राम के सदस्यों की भाँति प्रतीत हों। इसी दृष्टि से हमारा साहित्य विश्वमैत्री, विश्वबंधुत्व और मानव कल्याण पर बल देते आ रहा है। आज जरूरत है इस अंतर्राष्ट्रीय संकलनात्मक साहित्य को प्रगतिशील स्वरूप प्रदान कर विकसित करने का और सच भी है कि सच्चे साहित्य का संबंध किसी विशेष व्यक्ति से नहीं होता। उसमें मानव प्रकृति का अभ्यास मिलता है, जो किसी व्यक्ति तथा राष्ट्र के संकुचित बंधन से मुक्त होता है। इस प्रकार के साहित्य में मानव जाति के जीवन की झलक दिखाई देती है। ऐसे साहित्य के द्वारा ही मानव में अंतर्राष्ट्रीय सद्भावना विकसित की जा सकती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जीवन और साहित्य को पृथक् नहीं किया जा सकता। उन्नत साहित्य जीवन को नैतिक मूल्य प्रदान करते हैं, जो उसे उत्थान की ओर ले जाते हैं। साहित्य के विकास की कहानी वास्तव में मानव सभ्यता के विकास की गाथा है। साहित्य ने मनुष्य की विचारधारा को एक नई दिशा प्रदान की है या उसकी विचारधारा को परिवर्तित करने के लिए हमें साहित्य का सहारा लेना ही पड़ता है। साहित्य में ही वह अद्भुत व महान शक्ति है, जिससे समय–समय पर मनुष्य के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। प्रेमचंद ने कहा है–''साहित्य ही मनोविकारों के रहस्य खोलकर सद्वृत्तियों को जगाता है। सत्य को रसों द्वारा हम जितनी आसानी से प्राप्त कर सकते हैं, ज्ञान और विवेक के द्वारा नहीं कर सकते...। साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है...। हम अक्सर साहित्य का मर्म समझे बिना ही लिखना शुरू कर देते हैं। शायद यह समझते हैं कि मजेदार, चटपटी और ओजपूर्ण भाषा में लिखना ही साहित्य है। भाषा भी साहित्य का अंग है, पर स्थायी साहित्य विध्वंस नहीं करता, निर्माण करता है।''

समीक्षा

बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास एक संक्षिप्त अनुशीलन

डॉ0. पशुपति नाथ उपाध्याय
8/29–ए शिवपुरी
अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001
मो0 9897452431

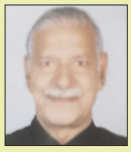

वस्तुतः साहित्यिक इतिहास का लेखन उन्मुक्त एवं स्वतंत्र साहित्यिक –सांस्कृतिक पर्यावरण की अपेक्षा रखता है, क्योंकि जहाँ विचार स्वातंत्र्य नहीं होता, वहाँ पर साहित्यिक कृति का निर्भीक विवेचन–विश्लेषण तटस्थता के धरातल पर तलस्पर्शी संभव नहीं होता। 'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' इस तथ्य का साक्ष्य प्रस्तुत करता है तथा ऐतिहासिक लेखन के सुव्यवस्थित विकास का यही रहस्य है, लेखक को कभी भी निरंकुश नियमों एवं सिद्धांतों तथा सत्ताधीशों–राजनेताओं के दबाव में झुकना नहीं पड़ा। यह साहित्यिक इतिहास महान साहित्य सर्जकों, शिक्षाविदों एवं क्रांतिकारी साहित्यकारों के लेखन से सम्बद्ध इतिहास है, जिन्होंने पूर्वागत स्थापनाओं में आवश्यक अपेक्षित परिवर्तन कर नए क्षितिज का अनावरण किया है। हिन्दी के महान साहित्यचिंतकों ने पुराने प्रश्नों का ही नए ढंग से उत्तर नहीं दिया, बल्कि नए सिरे से नए प्रश्न भी उठाए और उनके समाधान भी प्रस्तुत किए। इतिहास लेखन में जिस गंभीरता और मानसिक संतुलन की आवश्यकता होती है, वह दयानन्द जायसवाल के लेखन में प्रखर प्रज्ञा, तीव्र बुद्धि–विवेक, संतुलित मानसिकता, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने की क्षमता–दक्षता एवं तुलनात्मक दृष्टिकोण आदि गुण के रूप में विद्यमान हैं।

विविध वैचारिक परम्पराओं का अध्ययन–अनुशीलन करने के उपरांत इस तथ्य की जानकारी होती है कि बिहार के साहित्यकार में साहित्य लेखन की एक विशेष शास्त्रीय परंपरा रही है, जिसके मूल में एक प्रकार की वैचारिक क्रांति की भावसंपदा निहित थी, जो साहित्य सृजन में साकार हुई। साहित्य चिंतन के क्षेत्र में एक प्रकार का पुनर्जागरण कहा जा सकता है, जिसके परिणाम स्वरूप विविध भाषायी परंपराओं का आरंभ और विकास हुआ। कारण स्पष्ट है कि ''बिहार के इस भूमि पर सातवीं शताब्दी से आज तक हिन्दी साहित्य की अप्रतिहत धारा प्रवाहित दिखती है। हिन्दी भाषा और साहित्य का तो जन्म ही यहाँ के बौद्धों, जैनों नाथों एवं सिद्धों के साम्प्रदायिक साहित्य तथा उनमें प्रयुक्त प्राकृत–अपभ्रंश भाषा में माना जाता है। वैशाली का जैनधर्म एवं मगध का बौद्धधर्म दो विशाल वटवृक्षों की भाँति है, जिनकी प्रतिबिम्बित शाखाएँ– प्रशाखाएँ दूर–दूर तक फैली हैं।'' (पृ. 17)

बिहार के हिन्दी साहित्य का प्राचीनकाल सातवीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तक का निर्धारित किया गया है, जिसमें सरहपा से लेकर हरिब्रह्म (ब्रम्ह) तक को संदर्भित किया गया है तथा सिद्ध साहित्य की विकृतियों के विरुद्ध में नाथ साहित्य की संस्कृति का आविर्भाव दर्शाया गया है। जैन साहित्य के सर्वाधिक संख्या में प्रामाणिक ग्रंथों का भी संकेत है। साहित्यिक प्रवृत्तियों की सीमा स्वीकारते हुए मान्यताओं के आधार पर लेखकीय रचनाधर्मिता को बल प्रदान करते हुए नए चिंतन को सशक्त बनाया गया है, क्योंकि साहित्य और कला का सत्य ऐतिहासिक तथ्यों से अलग होता है। लेखक के लिए वस्तुन्मुखी जीवन के साथ–साथ भावजगत में भी सत्य की खोज करना आवश्यक होता है। वस्तुनिष्ठता ऐतिहासिकता का द्योतन करती है तथा संभावनाओं की चरितार्थता प्रमाणित करती है। प्राचीनकाल की उपलब्धियों में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि विद्यापति की साहित्य– साधना स्वीकार की गई है, क्योंकि विद्यापति भारतीय साहित्य की भक्ति–परंपरा के प्रमुख स्तंभ के रूप में सामने आए, जिन्होंने संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवहट्ठ तथा लोकभाषा मैथिली को जनसेवा में जीवित करने का महती प्रयास किया।(पृ. 36)

बिहार के हिन्दी साहित्य का पूर्व मध्यकाल चौदहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक निर्धारित किया गया है, जिसमें ललन दास, कंसनारायण, कृष्णदास, चतुर्भुज, श्रीधर, हरपति, सविता, सोनकवि, हरिदास, रतिपति मिश्र, दलेल सिंह, कृष्णकवि, शंकर चौबे, दरिया साहब, विधाता सिंह, मँगनीराम, पदुमन दास, प्रबल शाह, धरणीदास, भृगुराम मिश्र, रामचरण दास, दामोदर दास, गोविन्द, देवानन्द, मधुर मिश्र, भगवान मिश्र, रामयति, लोचन, हलधरदास, हरिचरण दास, देवराम, रामेश्वर दास, चंदन राम, हरलाल आदि के नामों का उल्लेख करते हुए संक्षिप्त परिचयात्मक विवेचन किया गया है। उपलब्धियों के अंतर्गत तथ्य भी रेखांकित किया गया है कि 'समाज के विभिन्न स्थितियों पर दृष्टिपात करके सहज जीवन का मार्ग सुलझाने से लेकर हठयोग की साधना तक प्राचीनकाल में मुक्तक काव्यरूप का जो विस्तार हुआ, निश्चय ही उसका पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व है। प्राकृतिक और अपभ्रंश से लेकर 'राउलबेल' तक शृंगार की जो परम्परा आई, उसने पूर्व मध्यकाल को प्रभावित करती हुई उत्तरमध्यकाल तक को छू लिया। लोकचेतना का परिणाम लोकभाषाओं के बढ़ते महत्त्व में लक्षित हुआ और वे मनोभावों तथा हृदयोद्‌गारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनने लगा। कवियों द्वारा आत्मपरिचय देना आदि प्रवृत्तियों का उल्लेख होने लगा।'' (पृ. 48) यह तथ्य भी विचारणीय है कि कल्पना को सर्जनात्मक साहित्य का मानदंड बनाकर श्रेष्ठ रचनाओं में तारतम्यता की स्थापना करने में यह नव्य तत्त्व अत्यन्त सार्थक सिद्ध हुआ। युगीन नए मनोवैज्ञानिक ज्ञान को, विशेषतः विचार सिद्धांत को साहित्य और कला के क्षेत्र में यह सिद्ध किया गया कि जीवन के सत्य की उपेक्षा कला का सत्य अधिक मार्मिक होता है।

बिहार के हिन्दी साहित्य का उत्तरमध्यकाल अठारहवीं और 19वीं शताब्दी का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें झब्बूलाल, मानिकचन्द दूबे, अनुपचन्द दूबे, सदल मिश्र, बालखंडी, ब्रह्मदेव नारायण, ऋतुराज कवि, लक्ष्मीपति परमहंस, वृन्दावन, दिनेश द्विवेदी, अजबदास, आनंदकिशोर सिंह, गणेश प्रसाद, टेकमन राम, देवी दास, रामजीवन दास, बेनीराम, साहबराम दास, जयरामदास, अग्नि प्रसाद सिंह, इसवी खाँ, उमानाथ, किफायत शेख, कुंजन दास, गुमानी तिवारी, गोपाल, चन्द्रकवि, चन्द्रमौलि मिश्र, गोपालशरण सिंह, तपसी तिवारी, तुलराम मिश्र, भीखनराम, रघुनाथ दास, रामनारायण प्रसाद, रामप्रसाद, रामरहस्य साहब, वंशराज शर्मा, सदानंद आदि रचनाकारों का परिचयात्मक शैली में सोदाहरण विवेचन प्रस्तुत किया गया है। रचनाकारों के आत्मविश्वास, साहस, सुबोध अभिव्यक्ति एवं स्पष्ट निरूपण शैली को सहृदयता और संवेदनशीलता के धरातल पर अधिष्ठित किया है। उन्नीसवीं शताब्दी में अमृतनाथ का जन्म 1801 ई0 में रामगढ़वा चम्पारण में होना पाया गया है। बिहार के साहित्यिक क्षेत्रों में अनेक महान विभूतियों ने अनेक क्षेत्रों में कीर्तिमान स्थापित किया है। उनमें शिवनन्दन सहाय, देवकीनंदन खत्री, कन्हैयालाल मिश्र, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, शरतचन्द्र चट्टोपाध्याय, अयोध्या प्रसाद सिंह, विलोचन झा 'लोचन', काशी प्रसाद जायसवाल, छविनाथ पांडेय, रामदहिन मिश्र, भिखारी ठाकुर, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, डॉ0 रामधारी सिंह 'दिनकर', डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, जगन्नाथ प्रसाद सिंह 'किंकर', रामवृक्ष बेनीपुरी, चन्द्रमा राय शर्मा आदि के महत्त्वपूर्ण साहित्यिक अवदान को रेखांकित किया गया है। सौ वर्षों के इतिहास में यह एक सुखद संयोग की बात है कि साहित्यकार अमृत राय का जन्म अमृत वेला में सन् 1801 ई0 में हुआ था, जबकि पीयूषवर्षी चन्द्रमा की चाँदनी में निबंधकार चन्द्रमा राय शर्मा का जन्म सन् 1900 ई0 में भोजपुर जिले के शाहाबाद जिले में हुआ था। इस प्रकार की ऐतिहासिक घटनाएँ यादगार बन जाती हैं, जिनसे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की निर्मिति संभव होती है।

हिन्दी प्रदेश में आधुनिक जीवन चेतना का उन्मेष मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि कही जा सकती है। बदलती हुई परिस्थितियों, अभिरुचियों एवं संवेदनाओं के परिवेश में साहित्य की विविध विधाओं में जोर–शोर से सृजन कार्य सम्पन्न हुआ। बिहार के हिन्दी साहित्य में नवजागरण, राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना, धार्मिक एवं सामाजिक सुधार की भावना, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, जातिप्रथा, दहेजप्रथा, पूँजीवाद, जमींदारी प्रथा, शोषित–पीड़ित के प्रति सहानुभूति आदि की प्रवृत्तियाँ साहित्य में विकसित हुईं तथा साहित्यकारों ने नारी सम्मान के प्रति भी अपनी अभिरुचि व्यक्त की। इस युग

में साहित्यिक और कला के क्षेत्र में वस्तु और रूप का विभेद करीब समाप्त सा हो गया, जिसके कारण साहित्यकारों ने बिम्बों तथा प्रतीकों के नए, सूक्ष्म एवं उपयोगी तत्त्वों को साहित्य के नए आकर्षणों में सम्मिलित कराने के अथक प्रयास किए। साहित्य और कला ने आधुनिक मानव को नए आयाम दिए तथा उसकी जीवन यात्रा में अन्तर्गत के स्वप्नों और भविष्य की आकांक्षाओं– अभिलाषाओं के नए अध्याय जोड़ने में सफल रहे। रचनाकारों की काव्यानुभूति की अभिव्यंजना में आत्माभिव्यक्ति के आग्रह का भाव विशेष रूप से देखा गया है, जो पाठकीय स्पंदन का हेतु सिद्ध हुआ है। निस्संदेह ही इसे साहित्य और कला की अभिनव उपलब्धि कहा जा सकता है।

बिहार के हिन्दी साहित्य और साहित्यकार का आविर्भाव आधुनिक युग में कृष्णमोहन 'कृष्ण' के जन्म से दर्शाया गया है, जिनकी जन्मतिथि 14 मार्च, 1901 ई0 रही है। आधुनिक युग में लेखक ने प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, पंत, आचार्य शुक्ल, बेनीपुरी, सुधांशु, दिनकर, नागार्जुन, रेणु, गोपाल सिंह नेपाली आदि साहित्यकारों के साहित्यिक योगदान को स्वीकारते हुए छोटे–बड़े सभी रचनाकारों के नामों का उल्लेख करने का प्रयास किया है, फिर भी कुछेक नाम ओझल हो गये हैं। लेखक की अवधारणा है कि ''हिन्दी साहित्य की आधुनिक परम्परा का यथेष्ट परिमार्जन तथा विकास हुआ। कविता, कहानी–कथा साहित्य और आलोचना में प्रौढ़ता आई। साहित्यमें रोचकता, कलात्मकता और सामाजिक चेतना की त्रिवेणी का संगम मिला। विषय वस्तु और शिल्प विधान दोनों दृष्टियों से साहित्य अनुपम बन पड़ा। कवियों की एक नई पीढ़ी का आविर्भाव होने लगा। नवीन प्रवृत्ति की प्रतिष्ठा हुई।''(पृ. 267)

वस्तुतः वस्तु की परख और पहचान के लिए हमें इतिहास का आश्रय लेना ही पड़ता है और इस क्रम में आलोचना का संबंध इतिहास से भी जुड़ जाता है। अतएव समाज और इतिहास अपने आपमें आलोचनात्मक क्षेत्र में एक दूसरे के सहायक सिद्ध होते हैं, जिसकी परिणति समाजशास्त्रीय आलोचना–पद्धति में देखी जाती है। यही स्थिति और परिचयात्मक आलोचना की भी है, जिसके आलोच्य कृति का प्रतिपादन विषय उसकी प्रवृत्ति और विशेषता के साथ स्पष्ट हो जाता है, जिसमें लेखक के लिए ऐतिहासिक परंपरा का निर्वहन की अनिवार्यता होती है। कृति के लेखन में परिचयात्मक आलोचना–पद्धति को अंगीकार किया गया है, जिसका ध्येय बौद्धिक दृष्टि से उत्कर्ष प्राप्त पाठकों के विचार विमर्श का ही विषय नहीं, बल्कि उसे सामान्य बौद्धिक स्तर के पाठक के मानस को भी विकसित करने में सहायक सिद्ध होना है। पढ़कर अच्छा लगा कि लेखक ने साहित्यिक परंपरा से हटकर, अपना निजी मत बनाकर परिचयात्मक पद्धति से नयामार्ग प्रशस्त करने का अदम्य साहस दिखलाया है, जो अनुशंसनीय एवं अनुकरणीय है।

बिहार के हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को 1961 से अद्यतन करते हुए सर्वेक्षण के आधार पर विवेचन–विश्लेषण वैविध्य परिदृश्य के धरातल पर किया गया है, जिसमें तथ्यात्मक आकलन और मूल्यांकन ही रचनाधर्मिता की निकष सिद्ध है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति में उन सभी सर्जक रचनाकारों और उनकी कृतियों को संदर्भित करते हुए काव्य, कहानी, उपन्यास, नाटक, आलोचना, निबंध आदि विधाओं का संक्षिप्त सर्वेक्षण करते हुए परिचयात्मक शैली में विवेचन किया गया है। साथ ही स्मारक साहित्य के क्षेत्र में रेखाचित्र, संस्मरण, रिपोर्ताज, जीवनी, आत्मकथा, यात्रा–वृतांत, पत्रलेखन आदि को भी रेखांकित किया गया है। संपादक एवं पत्रकार को भी यथास्थान संदर्भित किया गया है।

लब्धप्रतिष्ठ रचनाकारों की चुनी हुई लोकप्रिय एवं चर्चित रचनाओं को साक्ष्य रूप में प्रस्तुत किया गया है, ताकि उनसे मानव प्रकृति का अध्ययन, मनोवैज्ञानिक तथ्यों का उद्घाटन, ज्ञानवृद्धि के साथ मानसिक क्षितिज का विस्तार, मानवता और राष्ट्रीय भावना की जागृति आदि तथ्यों की जानकारी पाठकों को सहज ही हो सके। साहित्यिक परम्परा का निर्वहन करते हुए सांस्कृतिक समन्वय को भी स्थापित करने का लेखकीय उपक्रम रहा है। साहित्यकारों के साहित्यिक व्यक्तित्व एवं उनकी प्रवृत्तियों को समझने का सुअवसर देने का प्रयास भरसक लेखक ने अपना पुनीत दायित्व एवं लेखकीय धर्म समझा है। यही कारण है कि पाठकों की साहित्यिक अभिरुचि को उद्भूत करने में वह सफल रहा है। लेखक का स्पष्टमत है कि 'युगजीवन के समूचे व्यापकत्व को भोगना, समझना और कलात्मक अभिव्यक्ति देना सच्ची आधुनिकता है। कोई भी आधुनिक बोध साहित्य में तबतक स्थायी नहीं बन सकता, जबतक वह गहन अनुभूतियों के रूप में साहित्य की विकास–परंपरा का अंग न बन जाए। पाश्चात्य दर्शन और मतवाद हमें सचेत तो कर सकते हैं, किन्तु हमें दृष्टि नहीं दे सकते। जीवनदृष्टि तो निजी परिवेश से प्राप्त हो सकती है।'(पृ. 784) इस प्रकार लेखक का दृष्टिकोण समन्वयवादी रहा है और वह सामंजस्य में ही सौंदर्य देखने का आकांक्षी है।

वास्तव में समन्वयवादी दृष्टिकोण मात्र समीक्षात्मक दृष्टिकोण या समीक्षा पद्धति नहीं है, अपितु एक ठोस जीवन दर्शन भी है। लेखक की निष्ठा और अटूट आस्था इस समन्वयवादी वृत्ति में है, जो लेखन में एक प्रवृत्ति विशेष बनकर मूल्यांकन का प्रतिमान बन गयी है। यही कारण है कि सर्वेक्षण–निरीक्षण करते हुए, विभिन्न मतों और वादों के साहित्यानुशीलन में साम्य स्थापित करने की भी भरपूर चेष्टा की गई है। यह तथ्य भी देखा गया है कि धार्मिक मूल्यों, आध्यात्मिक मूल्यों, भौतिक मूल्यों आदि के साथ–साथ सौंदर्य–विषयक मूल्यों का समन्वय ही जीवन और साहित्य में परम लक्ष्य सम्प्रति माना गया है। लेखक इस सत्य को स्वीकारते हुए अपनी रचनाधर्मिता का निर्वहन करता है कि साहित्य सर्जक या लेखक का साहित्यिक कार्य समन्वय है, सामंजस्य स्थापन है तथा एकीकरण करना है–विभाजन नहीं। जीवन के व्यापक परिवेश एवं परिदृश्य के फलक पर समन्वय ही साहित्य निकष बन जाता है।

अनेकत्व में एकत्व का संधान बौद्धिक प्रखरता का द्योतक सिद्ध हुआ है, जिसके द्वारा दो विरोधी सिद्धांतों या मतवादों के समीकरण भी संभव हो जाता है। समन्वय की प्रवृत्ति में लोकहिताय की कामना और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की कामना निहित है। लेखक की कृति का अनुशीलन इस तथ्य की ओर भी संकेत करता है कि सिद्धांत पक्ष का प्रतिपादन करनेवाले रचनाकारों की भाववृत्ति और कर्मवृद्धि में ऐक्य स्थापन का ध्येय भी पूर्ण हुआ है। 'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' लिखकर दयानंद जायसवाल ने ऐतिहासिक क्षितिज की निर्मिति का सराहनीय कार्य किया है, जिसका वैशिष्ट्य इतिहास लेखन की विकासशील परंपरा का संवर्द्धन में है। उन्होंने प्राचीन मान्यताओं एवं अवधारणाओं को ज्ञान के नव्य सिद्धांतों का भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में नया संस्कार कर दिया। उनकी कालानुसरण की अद्भुत क्षमता की परिणति है कि नवीन और प्राचीन, भारतीय और पाश्चात्य दृष्टियों का सहज ही समाहार हुआ है। संतुलित चिंतन की चरम परिणति 'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' का प्रकाशन है। वादों का विश्लेषण और समन्वय वाद का निर्धारण शीर्षक से लेखन ने उद्घोष किया है कि 'आज का नव–लेखन युग अर्थात् वैविध्यकाल को हम समन्वयवाद काल कह सकते हैं। इसलिए इस वैविध्य काल को समन्वयवाद मानने और कहने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।'(पृ. 788)

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लेखक ने इतिहास लेखन की परंपरा का सामंजस्यपूर्ण विवेचन–विश्लेषण करते हुए अपनी समन्वयवादी रुचि–रुझान का परिचय दिया है, जो अभिनव और अपूर्व उपलब्धि है। इस साहित्य–चिंतन की मूलवर्ती चेतना सांस्कृतिक है, शास्त्रीय चिंतन में इसकी संवृक्ति है तथा लेखक की दार्शनिक मनोवृत्ति के कारण यह तत्त्वान्वेषण और तथ्यान्वेषण में परिणति पा गई है। हिन्दी साहित्य के इतिहास का शास्त्रीय विवेचन करते हुए लेखक ने अनेक मतों और वादों पर प्रकाश डाला है, विस्मृत तथ्यों का उद्घाटन किया है तथा शास्त्रीय सहज, सरल, चिंतन को नए ढंग से संतुलित किया है। वैविध्य में अंतर्निहित एकता समन्वय की खोज करने की कृति की प्रवृत्ति बन गई है। उनकी मानवतावादी नैतिक चेतना के कारण समन्वयवादी दृष्टि विकसित हुई है। अतएव उनके लेखन में तलस्पर्शिता, सूक्ष्मता एवं प्रखरता के तत्त्व सर्वत्र देखे गये हैं। बिहार के हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में दयानंद जायसवाल का महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाएगा। यह साहित्यिक कार्य भविष्य के इतिहास–लेखकों के मार्ग–प्रदर्शन कराने में सहायक सिद्ध होगा–ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

समीक्षा

बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास एक परिचय

मनोरंजन सहाय सक्सेना
ए–25 इन्द्रकोठी
लालकोठी टौंक रोड, जयपुर
मो0–9461093077

अधिकतर हर विद्यालय (कथित इंग्लिश स्कूल को अपवाद स्वरूप छोड़कर) के प्रवेश–द्वार के एक ओर लिखा होता है–ज्ञानार्थ प्रवेश और दूसरी ओर लिखा होता है–सेवार्थ प्रस्थान। स्कूल आगमन के समय छात्र जल्दी से क्लासरूप में घुस जाने के लिए अधीर होते हैं और स्कूल टाइम खतम होते ही घर जाने की आपाधापी में इन सूक्ति वाक्यों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देते और वैसे भी इनका नैतिक और आदर्श मूल्य समझ पाने के कारण इनके प्रति उदासीन ही रहते हैं।

छात्रों की इन सूक्ति वाक्यों के प्रति उदासीनता के लिए केवल छात्रों को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता। दोषी वह अध्यापक भी है, जो अध्यापन जैसे महत्वपूर्ण और पवित्र कर्म को एक सरकारी या मात्र एक नौकरी या एक पेशा मानते हैं। मगर अपवाद हर क्षेत्र में होते हैं और अपवादों से ही मर्यादाओं का अभिज्ञान होता है।

शिक्षा के क्षेत्र में ऐसा ही एक अपवादस्वरूप है– श्रीदयानन्द जायसवाल, शिक्षाविदों के रूप में एक समर्पित शिक्षक जो केवल विद्यालय में किस क्लास को हिन्दी पढ़ाना है, जैसी व्यावसायिक औपचारिकता पूरी नहीं करता, बल्कि हिन्दी का अतीत क्या था और उससे उसके भविष्य के लिए कुछ बहुउद्देशीय और बहुउपयोगी सामग्री आनेवाली पीढ़ियों के लिए कैसे संगृहीत और सुरक्षित की जाए, इसका पूरा प्रयास करते हैं।

श्रीदयानन्द जायसवाल द्वारा लिखित–'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' ऐसा ही प्रयास है, जो आनेवाली कई पीढ़ियों के हिन्दी साहित्य के विद्यार्थियों और शोधार्थियों के लिए मार्गदर्शक व ऐतिहासिक ग्रंथ प्रमाणित होगा और अपनी उपादेयता सिद्ध करेगा।

'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' का आरंभ बिहार के इतिहास के प्रसंग से होता है। इस प्रकार बिहार के साहित्यिक अतीत उसकी थाती तथा उसके वर्तमान को आप तक जिस रूप में रख सके हैं, उसके सर्जक राजर्षि जनक, याज्ञवक्ल्य, गार्गी आदि से लेकर उदयनाचार्य, विद्यापति आदि ने अध्यात्मचिंतन और कला को पूर्णता प्रदान करने में जो अवदान दिया है, वह बिहार का ही नहीं, पूरे भारत का गौरव है। मेगास्थनीज, फाहियान तथा ह्वेनसांग के यात्रा–विवरण में भी बिहार की वास्तविक महिमा का बोध होता है।

इस ग्रंथ का प्राक्कथन से ही यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक ने इस ग्रंथ की रचना के लिए पूर्ववर्ती विद्वानों के विचारों का यथावत् प्रकाशन नहीं स्वयं श्रमपूर्वक अनेक साहित्यिक तथा वैदिक और पौराणिक ग्रंथों का अध्ययन किया है और आवश्यकतानुसार उनके अंश उद्धृत किये हैं।

विद्वान लेखक का मत है कि आरंभ में संस्कृत ग्रीक और लैटिन यह तीन भाषाएँ ही थीं और अन्य भाषाओं का उद्भव विकास इन्हीं तीन भाषाओं से हुआ है। आर्यावर्त्त में बोलचाल में जो संस्कृत प्रचलित थी, उसे आचार्य पाणिनि और पतंजलि जैसे व्याकरणविदों ने व्याकरण के अनुशासन से परिष्कृत किया, मगर जब पूर्व में जन–संवाद का आधार संस्कृत भाषा जब इस व्याकरण के अनुशासन के अनुसार परिष्कृत नहीं हो सकी, उसे विद्वानों के द्वारा प्राकृत कहा गया है।

प्राक्कथन में लेखक ने बहुत से महत्वपूर्ण मत प्रतिपादित किये हैं–''ब्राह्मण, जैन, बौद्ध आदि प्राकृत पोषक दर्शनकारों ने कुछ ऐसा निर्माण किया, जिससे मागधी, अर्धमागधी और शौरसेनी रूपों में प्राकृत भाषा संस्कृत को स्वीकारा और तब तत्कालीन जन–भाषा विच्छिन्न होकर प्रादेशिक भाषाओं का भी निर्माण किया। क्रमशः प्राकृत और कुछ प्रादेशिक भाषाओं के संयोग से अपभ्रंश का निर्माण हुआ।''

लोकभाषाओं के उद्भव के बारे में लेखक का मत है कि लोकभाषाओं में स्थान और समय की आवश्यकता के अनुसार बहुत से नये शब्द आ मिले। इस प्रकार अनेक लोकभाषाएँ बन गईं। लेखक ने विद्वत्तापूर्वक बिहार की जनभाषाओं मैथिली, भोजपुरी, मगही और अंगिका के उद्भव और विकास पर भी चर्चा की है। भाषा का इतिहास मानव समाज के इतिहास के ही नहीं भूगोल के साथ भी जुड़ा होता है, इसलिए वर्तमान बिहार राज्य के मगध से बिहार बनने के बारे में लेखक का मत है–हमारा बिहार वाल्मीकि रामायणकाल के अनुसार कई भागों में विभक्त था। करुश, मगध और अंग जो गंगा के दक्षिण चुनार से गिद्धौर तक जिसे कीटक भी कहते थे। गंगा के उत्तर में मलद, वैशाली, मिथिला और पुण्ड नामक खंड, यह सभी महाभारत काल में विद्यमान थे। इनमें मगध, मिथिला और वैशाली आदि खंडों का अस्तित्व बौद्धकाल में भी था, जिसमें अंग, मगध के और मिथिला वैशाली गणराज्य के अंतर्गत था। मौर्यकाल में ये सभी मगध के और मिथिला गणराज्य के अंतर्गत था। मौर्यकाल में ये सभी मगध साम्राज्य के अंतर्गत थे। वहीं के बौद्धमठ के 'विहार' से 'बिहार' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम महाकवि विद्यापति–लिखित 'कीर्तिलता' के तृतीय पल्लव में हुआ।

लेखक ने विद्वत्तापूर्वक बिहार में हिन्दी के क्रमिक विकास की चर्चा करते हुए उसमें बौद्धधर्म के ग्रंथों की भाषा की भूमिका के महत्त्व की प्रासंगिक चर्चा की है–पालि, हीनयानी बौद्ध सम्प्रदाय की भाषा के रूप में प्रसिद्ध है। पालि शौरसेनी प्राकृत से समानता रखती है और वही प्रचलित भाषा है।....हिन्दी साहित्य का इतिहास वैदिक काल से ही आरंभ होता है। युग के अनुसार इसके नाम में परिवर्तन होते रहा, कभी वैदिक, कभी संस्कृत, कभी प्राकृत कभी अपभ्रंश तो कभी हिन्दी सामान्यतः प्राकृत की अंतिम अपभ्रंश अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव हुआ।

बिहार के हिन्दी साहित्य के बारे में लेखक का मत है बिहार की इस भूमि पर सातवीं सदी से आज तक हिन्दी साहित्य की अप्रतिहत धारा प्रवाहित दिखती है। हिन्दी भाषा और साहित्य का तो जन्म ही यहाँ के बौद्धों, जैनों एवं नाथ सिद्धों के साम्प्रदायिक साहित्य तथा उनमें प्रयुक्त प्राकृत–अपभ्रंश भाषा में माना जाता है। बिहार का हिन्दी साहित्य नामक इस ग्रंथ में आगे हिन्दी साहित्य की तरह काल विभाजन इस प्रकार किया गया है–

1. बिहार के हिन्दी साहित्य का प्राचीन काल–600 से 1375 तक
2. बिहार के हिन्दी साहित्य का पूर्वमध्य काल–1376 से 1750 तक
3. बिहार के हिन्दी साहित्य का उत्तरमध्यकाल–1751 से 1900 तक
4. बिहार के हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल–1901 से 1960 तक
5. बिहार के हिन्दी साहित्य का वैविध्य काल–1961 से अद्यतन

'बिहार के हिन्दी साहित्य का इतिहास' कवियों की कविताओं के चयन में लेखक ने भक्तकवियों की रचनाओं को महत्त्व दिया है तो राजनैतिक मान्यता के अनुसार–भारत में गांधीजी के राजनैतिक जीवन का आरंभ बिहार में चंपारण सत्याग्रह से माना जाने और स्वाधीनता संग्राम में उनकी भूमिका के महत्व को ध्यान में रखते हुए उनके निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कविराज गिरिधर शास्त्री 'भ्रमर' की यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं–

''वर्षों के पश्चात् आज फिर कर्मवीर बलिदान हुआ है।

लिया सुरों पे उसे स्वर्ग में उसका स्वागत गान हुआ है।
या प्रियमान कर्मयोग का सहसा अभ्युत्थान हुआ है।
भारत ही क्यों विश्वभर बिन गांधी के सुनसान हुआ है।
आज रुक जा चांदनी मत व्योम में दीपक जलाओ
प्यार से मुख चूम शशि को मत बुलाओ मत बुलाओ
विश्वविजयी आज बापूजी हमारे चल बसे हैं
आज संध्या के बिना ही सूर्य मेरे जा धंसे हैं।''

गांधीजी को श्रद्धा सुमन हैं तो 'दिनकर' जी की ओजस्वी हुंकार भी है आधुनिक काल की कविता में–

''हुंकारों से महलों की नींद उखड़ जाती
सांसों के बल से ताज हवा में उड़ता है
जनता की रोके राह समय में ताव कहाँ
वह जिधर चाहती काल उधर ही मुड़ता है।''

इस बृहद् ग्रंथ को पूरा पढ़ने और उसपर विचार रखना विद्वान समीक्षकों का काम है और इसमें काफी समय लगना भी सुनिश्चित है और मुक्त विचार प्रकाशन में एक पुस्तक तैयार हो जाना भी सुनिश्चित है, मगर मुझे संयोगवश और आवश्यकतानुसार इस शोधार्थियों के लिए सश्रम तैयार ग्रंथ के कुछ अंश पढ़ने का तो अवसर मिल पाया है और मेरी धारणा है कि शिक्षाविद् साहित्यकार, पत्रकार–संपादक की बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्रीदयानन्द जी जायसवाल का यह ग्रंथ युग–युगों तक आनेवाली कई पीढ़ियों के हिन्दी प्रेमियों और शोधार्थियों के लिए एक धरोहर ग्रंथ साबित होगा।

डॉ. प्रेमचन्द पाण्डेय प्रेम किरण
उर्दू बाजार लेन, सराय
भागलपुर (बिहार)
मो. 9199003205

फागुन के दोहे

मन के आँगन जब पड़े प्रिय फागुन के पाँव
मन की मैंना लगी फुदकने, अरमानों के गाँव

तन तरुवर पर खिल गए, प्रेम प्यार के फूल
नजर नहीं आते इधर, क्लेश कपट के शूल

रूप गंध रस से भरा, देता ताल रसाल
कलिका का रसपान कर, अलि अब हुआ बेहाल

बूढ़े भी गाने लगे आज फागुनी राग
मन के पानी में लगी जब फागुन की आग

मन तरुवर पर बैठकर गाता मन का काग
कुसुम कली किसलय सभी, गाते राग विहाग

फागुन चढ़ते खुल गये, मन के सारे द्वार
महुआ बनकर झर रहा, नेह छोह अरु प्यार

नयन बैन व सैन से, कौन बुलाता पास
क्षण–क्षण बढ़ती जा रही, मधुर मिलन की प्यास

बदले–बदले लग रहे, आज पिया के ढंग
मेरा भी मन चाहता, अब प्रियतम का संग

रह–रह आने लग गये, याद हमारे कंत
लगता तन मन पर किया, जादू आज वसन्त

तन वृन्दावन हो गया, मन मुरलीधर श्याम
मन की मुरली टेरती, राधा–राधा नाम

मन तो हुआ पलाश है, तन अपना कचनार
नवयौवन के भार से, गदराई तन डार

दृग ने दृग शर से किया, दृग को आज अधीर
शूरवीर वह कौन है, जिसने रखा धीर

हरित पीत अरु अरुण में, मिला प्यार का रंग
डालो ऐसे प्यार से, भीगे सारे अंग

समता सद्व्यवहार का, निशिदिन मलो गुलाल
घृणा–द्वेष के शूल तुम, मन से आज निकाल

उनके घर भी झाँकना, जहाँ न रंग गुलाल
जिनके तन कपड़ा नहीं, रोटी हुई मुहाल

होली के संग ईद का, जब बढ़ जाए मेल
व्यक्ति और समाज संग, चले राष्ट्र की रेल।

समीक्षा

प्रेमचन्द की उपन्यास - कला द्विज की अनुपम कृति

डॉ0 निरूपमा राय
C/o श्रीशंभुनाथ झा
पूर्णियाँ (बिहार)
मो. 8002747533

'प्रेमचन्द की उपन्यास कला' पं. जनार्दन प्र0 झा 'द्विज' की एक अद्वितीय रचना कृति है। समीक्षा को एक प्रकार का सत्यान्वेषण समझनेवाले द्विज जी ने ही सर्वप्रथम प्रेमचन्द की उपन्यास कला पर सारगर्भित और कालजयी समीक्षा प्रस्तुत की। प्रेमचन्द जैसे अद्‌भुत कथाकार की रचनाधर्मिता और कला को अपनी सूक्ष्म पारखी दृष्टि से तौलकर सर्वप्रथम उनपर लेखनी चलानेवाले द्विज ही थे।

इस समीक्षात्मक पुस्तक के आठ विभाग हैं। विषय प्रवेश के साथ वस्तु विन्यास, चरित्र निर्माण, कथोपकथन का प्रयोग, देशकाल का प्रतिबिम्ब, भाषा शैली और चरित्र चित्रण है, कथोपकथन का प्रयोग, देशकाल का प्रतिबिम्ब, भाषा शैली और भाव व्यंजना, उद्देश्य पालन और अंत में उपसंहार। इन आठों विभागों में कथासाहित्य के उद्‌भव से लेकर प्रेमचंद के समकालीन औपन्यासिक के बीच प्रेमचंद के स्थान की व्यापक और सार्थक सारगर्भित चर्चा प्राप्त होती है। यही इस समीक्षात्मक पुस्तक की विशिष्टता है। प्रेमचंद की पूर्ण रचनाधर्मिता पर एक व्यापक विस्तृत सटीक समालोचना है–'प्रेमचंद की उपन्यास कला।'

वस्तुतः मानव जीवन की एक कहानी ही तो है। भाषा की उपलब्धि के साथ ही मनुष्य में कथा प्रेम का प्रादुर्भाव भी हो गया था। कुछ कहने, कुछ सुनने की प्रवृत्ति 'कुछ गढ़ने' की ओर भी उन्मुख होती गयी थी। प्राचीन काल से कथा–साहित्य अस्तित्व में रहा है। ऋग्वेद, ब्राह्मणग्रंथ, उपनिषद्, बौद्ध तथा जैनसाहित्य (प्राचीन) में भी कथा बीज मिलते ही हैं। बड़े–बड़े ज्ञानी और धर्मोपदेशकों ने भी कहानी कला का ही आश्रय लेकर धर्मपथ, ज्ञानपथ को सुगम बनाया था। कहानी कला का विकास सहजता से होता गया, क्योंकि ये जीवन के मर्म का स्पर्श करती थी। प्रारंभिक दौर में संस्कृत साहित्य से ली गयी पौराणिक वैदिक और धार्मिक कथाओं की प्रधानता रही, फिर आया भारतेन्दु काल जब कहानी की विकासधारा एक नई गति से आगे बढ़ी। कहानी के विस्तार का कारण बताते हुए द्विज जी लिखते हैं–''सामाजिक तथा कलात्मक स्थिति के परिवर्तन चक्र द्वारा परिचालित मानव प्रवृत्ति, जैसे–जैसे अपनी प्रेरणा को प्रगतिशील बनाती जाती है, वैसे ही वैसे उसमें उद्‌भावना शक्ति का विकास होता जाता है और उसी के फलस्वरूप होता है, कथा साहित्य के वैभव का विस्तार ।हिन्दी क्षेत्र में इस प्रकार की प्रेरणा और उद्‌भावना–शक्ति का प्रथम साक्षात्कार 'रानी केतकी की कहानी' ने कराया।

भारतेन्दु युग में लाला श्रीनिवास, बालकृष्ण भट्ट आदि ने भी कला उपन्यास लिखे पर कहानी में जिस सूक्ष्म मौलिकता की नितांत आवश्यकता होती है, वो नादारद थी। मौलिकता ही वो विशिष्ट गुण है, जो कहानी को आकर्षक बनाती है और पाठकों के मन में उत्सुकता का सृजन करती है। 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन के बाद ही कहानी में मौलिकता के बीज का वपन हुआ और द्विज जी के अनुसार ''आज का कथा–साहित्य की उन्नति के मूल में सरस्वती पत्रिका का ही प्रयास और योगदान है।'' द्विज जी ने काशी की पत्रिका 'इन्दु' का भी योगदान कहानी साहित्य की उन्नति में माना है। 'इन्दु' में छपी मौलिक कहानियों ने कथा–साहित्य जगत में नूतन युग का सूत्रपात किया। जयशंकर प्रसाद की कहानी, प्रथम मौलिक कहानी 'ग्राम' तथा विश्वम्भरनाथ की कहानी 'परदेशी' इसी में प्रकाशित हुई थी। फिर तो राधिकारमण सिंह, कौशिक, पं0 चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', ज्वालादत्त शर्मा, चतुरसेन शास्त्री जैसे लेखकों की रचनाएँ मौलिकता की नूतन सुवास सी आयीं। साथ ही एक और रचना आयी, जिसने हिन्दी का बड़ा उपकार किया। और वो रचना थी बाबू देवकीनंदन खत्री का प्रथम हिन्दी उपन्यास जो पूर्णतः मौलिक था। नाम था–चन्द्रकांता संतति। फिर 'हरिऔध' का भाव प्रधान शुद्ध साहित्यिक उपन्यास–'अधखिला फूल' और बाबू बृजनंदन सहाय का 'राधाकांत' नामक उपन्यास आया। इस समय प्रेमचंद उर्दू में लिखते थे। कथा साहित्य में शीघ्र ही युगान्तर उपस्थित हुआ, जब 1905 में प्रयाग के इंडियन प्रेस से प्रेमचंद की रचना 'प्रेमा' प्रकाशित हुई और सरस्वती, लक्ष्मी जैसी उत्कृष्ट साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रेमचंद की कहानियाँ छपने लगीं।

द्विज जी ने प्रेमचंद की रचनाओं का अध्ययन बेहद सूक्ष्मता से किया था, तभी तो उनके प्रत्येक 'शब्द' से मानो एक 'शोध' की अनुभूति होती है। 'प्रेमा' से लेकर 'गोदान' की सारगर्भित और अद्‌भुत विवेचना द्विज जी ने प्रस्तुत की है। 'प्रेमा' प्रेमचंद का उर्दू उपन्यास 'हम खुरमा व हम सवाब' का ही हिन्दी अनुवाद है, जिसमें विधवा विवाह से जुड़ा बेहद संवेदनशील पहलू उठाया गया गया है। प्रेमचंद के अन्य उपन्यासों के बारे में द्विज जी की टिप्पणी है–

''सेवासदन' नामक प्रेमचंद के उपन्यास ने संपूर्ण हिन्दी साहित्य जगत को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। समाज की रूढ़िग्रस्त दुर्बलताओं तथा दुर्व्यवस्थाओं के जो मार्मिक चित्र उसमें खींचे गये वो अद्‌भुत थे। 'सेवासदन' के बाद आयी 'वरदान' उत्कृष्टता में काफी पीछे थी। फिर आया 'प्रेमाश्रम' जो कृषक जीवन की दयनीय अवस्था और मानवीय प्रवृत्तियों का मार्मिक एवं मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करनेवाला लोकप्रिय उपन्यास कहा गया है। 'रंगभूमि' मानव स्वभाव के जटिल रहस्यों की मनोरंजक व्याख्या है तो 'कायाकल्प' मानव जीवन की मार्मिकता तथा मनोवैज्ञानिक स्थिति का विश्लेषण है। यह उपन्यास सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याओं पर तो मनोरंजक प्रकाश डालता ही रहता है, आध्यात्मिक रहस्यों की उद्‌भावना भी इसमें बड़ी सुंदरता के साथ की गयी है। 'निर्मला' विधुर विवाह और कम उम्र बालिका के विवाह के दाहक दुष्परिणाम का अद्‌भुत वर्णन है। ये एक सुंदर सामाजिक उपन्यास है। प्रेम–साधना में संलग्न रहकर भी हृदय कर्त्तव्य भावना के आग्रह का किस प्रकार पालन कर सकता है, जीवन को सेवा और त्याग का आधार बनाकर उसे उत्सर्ग के रूप में बदलकर प्रेम के किस मंगलमय रूप का विधान किया जा सकता है, वो इसमें दिखाया गया है। इन छोटे उपन्यासों के बाद लिखा गया बड़ा उपन्यास 'गबन' एक छोटी सी भूल या दुर्बलता के कारण मनुष्य को कहाँ से कहाँ चला जाना पड़ता है, क्या से क्या हो जाना पड़ता है, इसी घटनाचित्र का इस उपन्यास में अंकन है।

हमारे राष्ट्र के निर्माण–कार्य में दलितों, गरीब किसानों और मजदूरों की दुरवस्था के सुधार का प्रश्न कितना महत्वपूर्ण है?इस विषय को आधार बनाकर लिखी गयी 'कर्मभूमि' बढ़िया उपन्यास है। प्रेमचन्द का अंतिम उपन्यास 'गोदान' श्रमजीवियों तथा सुख–सेवियों के जीवन संग्राम पर आधारित है। इसमें ग्राम्य तत्वों की प्रधानता अपना संपूर्ण सौंदर्य लेकर आयी है।''

द्विज जी ने प्रेमचंद के उपन्यासों पर सूक्ष्म निर्मल दृष्टिपात किया तो अनमोल मोती ढूँढ ही लाये। प्रेमचंद की उपन्यास कला के तत्वों का अद्‌भुत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है 'प्रेमचंद की उपन्यास कला' में। द्विज जी ने उपन्यास के प्रथम तत्व 'वस्तु विन्यास' की कसौटी पर प्रेमचंद के उपन्यासों को कसते हुए सारगर्भित व्याख्या प्रस्तुत की है। प्रेमचंद की विस्तृत कथा सामग्री पर ही सर्वप्रथम द्विज जी की दृष्टि गयी है। उन्होंने लिखा है–

''प्रेमचंद की कथावस्तु हमारी उत्सुकता में किसी प्रकार का नूतन आवेश नहीं लाती, बहुत ही शांत और सरल गति से वह हमारे अनुमान के साथ चलती है–कहीं किसी प्रकार के रहस्य जाल में उलझाकर नहीं रखती। सुप्रसिद्ध बंगाली लेखक और उपन्यासकार शरच्चन्द्र और प्रेमचंद में यही भेद है। शरत् बाबू के किसी उपन्यास को पढ़ते समय बीच में यह अनुमान कर लेना असंभव है कि कहानी कहाँ–कैसे मुड़ जाएगी और उसका अंत कैसे किया जाएगा। एक

घटना के बाद दूसरी घटना का आगमन इस आश्चर्यपूर्ण ढंग से होता है कि पहले से उसके संबंध में किसी प्रकार की निश्चयात्मक कल्पना पाठकों के मन में उत्पन्न हो ही नहीं सकती। वस्तु विन्यास का ये अनुपम कौशल प्रेमचंद में नहीं है। ये अपने पाठकों को इस प्रकार के औत्सुक्यपूर्ण असमंजस में डालकर रख ही नहीं सकते। 'अब उसके आगे क्या होगा' इसका संकेत उनके उपन्यासों में मिलता जाता है। किसी घटना विशेष की संभावना की आशंका कभी तो पात्रों के अंतस्तल की उद्विग्नता में पैठकर बोलती है, तो कभी उसके स्वप्न बनकर।

द्विज जी की व्याख्या कितनी सटीक थी इसकी अनुभूति हमें प्रेमचन्द के उपन्यासों के अध्ययन से सहज ही हो जाती है। 'निर्मला' की मुख्य पात्र निर्मला के मन की उद्विग्नता, स्वप्नाभास अनायास पाठक को होनी के बारे में बताते चलते हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में व्याप्त सरलता को द्विज जी ने कई सटीक उद्धरण देकर बताया है।

पारिवारिक जीवन का चित्र अथवा किसी विशेष की दुरवस्थाओं का वर्णन ही नहीं, अपितु विस्तृत समाज और विशाल राष्ट्र की व्यापक गंभीर समस्याओं पर प्रेमचंद की लेखनी एकरस चली है। प्रेमचंद ने जीवन–घटना के बहुरंगी चित्र खींचकर पाठकों के लिए मनोवैज्ञानिक अध्ययन की पूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है और यह ध्यान भी बखूबी रखा है कि मानव किसी चिंता में न पड़कर जीवन को कैसे उल्लासपूर्ण, उद्योगपूर्ण, सुदृढ़ और शिक्षित बनाये। प्रेमचंद उच्चकोटि के व्यावहारिक आदर्शवादी लेखक थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने उपन्यासों की कथा सामग्री का चयन करते समय कभी भी वास्तविकता की अवहलेना नहीं की। प्रेमचंद की वास्तविकता के संबंध में द्विज जी लिखते हैं–

''मानव जगत की मलिन से मलिन वास्तविकता की ओर संकेत करते समय भी प्रेमचन्द शीलता और शिष्टता के उपकरणों से ही काम लेते हैं। इनकी वास्तविकता नग्न अश्लीलता का पर्याय नहीं बनती।''

वस्तुतः 'कायाकल्प' की लौंगी ठाकुर की रखैल होने पर भी मनोरमा की माँ ज्यादा प्रतीत होती है। सेवासदन की सुमन भले ही वेश्या है, पर प्रेमचंद उसके अश्लील एवं वांछनीय व्यापारों का वर्णन नहीं करते। कर्मभूमि की मुन्नी के सतीत्व अपहरण की बात एक 'चीत्कार' के माध्यम से बता देते हैं। द्विज जी ने विस्तृत ढंग से सभी तथ्यों की गूढ़ समीक्षा प्रस्तुत की है। द्विज जी कहते हैं–

''प्रेमचंद पावन भावनाओं की अभिव्यक्ति अपावन प्रसंगों में करते चलते हैं। पाप की थोड़ी सी श्यामल छाया दिखलाकर ये तुरंत उसे पुण्य उज्ज्वल प्रकाश से भर देते हैं। इनकीरचनाओं में जो 'असुंदर' है, वह सदैव प्रभावहीन–आकर्षणशून्य है। और जो सुंदर है, वो हमारी भाषाओं और अभिलाषाओं के आवेग को परिष्कृत करके हमें अपने पास बुला लेता है।''

प्रेमचंद ने कथा सामग्री का चयन और उपयोग दोनों उत्कृष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। पर ये समीक्षात्मक ग्रंथ पढ़कर आश्चर्य होता है कि द्विज जी की पारखी दृष्टि ने प्रेमचंद की एक कमी को कैसे ढूँढ निकाला। वो लिखते हैं–

''अपनी वर्णना शक्ति के आवेग में प्रेमचंद कभी–कभी असावधान हो जाते हैं। कहीं–कहीं वर्णन अतिरंजित और अरुचिकर हो जाता है।'' इस संबंध में उन्होंने सेवासदन (पृ. 26) कर्मभूमि (पृ. 47), कर्मभूमि (पृ. 240) इत्यादि उदाहरण दिये हैं, जहाँ द्विज जी के अनुसार भूलें हुई हैं।

इन सबके बावजूद प्रेमचंद की पर्यवेक्षण शक्ति की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है कि ग्रामीण जीवन का शायद ही कोई चित्र हो, जिसपर प्रेमचंद की दृष्टि न पड़ी हो। ग्राम्य तत्त्वों की प्रधानता ही प्रेमचंद की सबसे बड़ी विशेषता है। वर्णन की संपूर्णता और सजीवता प्रेमचंद की सफलता का कारण है। घटनाएँ चाहे नयी हों या पुरानी प्रेमचंद के उपन्यासों में उनका विकास क्रम सम्बद्ध एवं स्वाभाविक होता है। जीवन की घटना से संबंध रखनेवाली साधारण सी बात को भी प्रेमचंद अपनी अलौकिक प्रतिभा के पुट से असाधारण बना डालते हैं। 'गबन' उपन्यास प्रेमचंद की इस प्रतिभा का उत्कृष्ट निदर्शन है।

प्रेमचंद के पात्रों को वास्तविक जीवन जगत के पात्र चरित्र मानते हुए द्विज जी ने सारगर्भित समीक्षा प्रस्तुत की है। उपन्यास दो प्रकार के होते हैं–वस्तु प्रधान एवं पात्रप्रधान। प्रेमचंद के उपन्यासों में इन दोनों ही तत्वों का उपयुक्त सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है। द्विज जी ये मानते हैं कि प्रेमचंद ने सदा वस्तु एवं पात्र के संबंध की रक्षा की है। घटनाचक्र में पड़कर प्रेमचंद के पात्रों का चरित्र प्रस्फुटित होता है और पात्रों के चरित्र से ही घटना की सृष्टि भी होती है। जैसे रंगभूमि का सब कुछ है सूरदास और सूरदास को अमरत्व प्रदान करनेवाली है रंगभूमि की परिस्थितियाँ। द्विज जी ने प्रेमचंद के पात्र चित्रण को कई कसौटियों पर परखा है। शील निरूपण की प्रणाली, सजीवता व स्वाभाविकता, अविश्वसनीय संभावना, चरित्र के विभिन्न अंगों का विश्लेषण, मनस्तत्व की मनोवैज्ञानिक व्याख्या तथा पात्रों के चरित्र का प्रभाव। और सभी दृष्टिकोण से प्रेमचंद को सफल चितेरा माना है। द्विज जी के अनुसार अभिनयात्मक एवं विश्लेषणात्मक है प्रेमचंद की शील निरूपण प्रणाली। साथ ही प्रेमचंद के पात्र सजीव एवं स्वाभाविक हैं। चाहे वो प्रेमाश्रम के राय कमलानंद हों या कायाकल्प की रानी देवप्रिया। सेवासदन का सदन सिंह, कर्मभूमि की सुखदा या समरकान्त सभी सजीव पात्र हैं। द्विज जी ने प्रेमचंद के चरित्रचित्रण के संबंध में कहा है कि ''कुछ ऐसे चरित्र भी हैं, जिनका संबंध अस्वाभाविकता से तो नहीं, पर अविश्वसनीय संभावना से रहता है। कुछ ऐसी संभावनाएँ अवश्य होती हैं, जिनपर विश्वास करने को जी नहीं चाहता जैसे रंगभूमि के सूरदास की शारीरिक शक्ति का प्रदर्शन। कभी वो चक्षु विहीन भिखारी भीख के पीछे पूरा एक मील तक जॉन सेवक की गाड़ी के साथ दौड़ता चला जाता है। कभी दुबला–पतला होकर भी जगधर जैसे मोटे व्यक्ति से मल्लयुद्ध कर विजयी बनता है। द्विज जी की सूक्ष्म दृष्टि ने ऐसे कई उदाहरण ढूँढ़ निकाले हैं। प्रेमचंद के विभिन्न चरित्रों का विश्लेषण करने के उपरांत द्विज जी की लेखनी कहती है–

''इनके उपन्यासों के पात्र, चाहे वो किसी भी वर्ग के हों अपना प्रभाव पाठक के मन पर छोड़ जाते हैं। ये जितने सुदृढ़ होते हैं, उतने ही स्थायी भी। प्रेमचंद के अच्छे पात्र हमारी अच्छाइयों को बढ़ाते हैं और बुरे पात्र हमारी बुराइयों को घटाते हैं। यही इनकी चरित्र–चित्रण कला का सबसे बड़ा महत्व है।

प्रेमचंद की उपन्यासकला को कथोपकथन के प्रयोग की कसौटी पर कसते हुए द्विज जी लिखते हैं–''प्रेमचंद के उपन्यासों में कथोपकथन का मुख उद्देश्य पात्रों के चरित्र की मनोरंजक और मनोवैज्ञानिक व्याख्या करना ही है।''

कथोपकथन का मुख्य उद्देश्य घटनाओं को प्रगतिशील बनाना ही होता है। जिन उपन्यास में विवरण की जितनी न्यूनता और बातों की जितनी अधिकता रहेगी, वह उतना ही आकर्षक एवं मनोरंजक होगा। प्रेमचंद के कथोपकथन में स्वाभाविकता और उपयुक्तता है। द्विज के अनुसार कथोपकथन ही प्रेमचंद जी के उपन्यासों का प्राण तत्व है।

देशकाल के प्रतिबिम्बों की कसौटी पर कैसा है प्रेमचंद साहित्य?इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करते हुए द्विज जी लिखते हैं कि ''प्रेमचंद समाज और राष्ट्र के भिन्न–भिन्न अंगों तथा स्वरूपों का विश्लेषण करते हुए देशकाल का मार्मिक चित्र उपस्थित करते हैं। उसमें इतिहास की सच्चाई भी रहती है और कला की सुंदरता भी।''

वस्तुतः रंगभूमि की कथा एक दृष्टिहीन भिखारी की बात से शुरू होकर अंत तक पहुँचते–पहुँचते समाज का एक–एक अंग खोलकर दिखा देती है। वह हमें भिन्न–भिन्न सिद्धांतों तथा भिन्न–भिन्न आदर्शों के नर–नारियों का परिचय देती हुई समाज के नाना प्रकार की समस्याओं की ओर भी ध्यानाकर्षित कराती है। उसी तरह प्रेमाश्रम में भी विभिन्न प्रकार के पारिवारिक, सामाजिक अवस्थाओं का विशद वर्णन प्राप्त होता है। कायाकल्प में भी गृहस्थ जीवन, साम्प्रादायिक झगड़े, किसान आंदोलन, राजनीतिक घटनाओं आदि का विस्तृत एवं सजीव वर्णन मिलता है। 'निर्मला' में तो हमारी सामाजिक स्थिति का वास्तविक प्रतिबिम्ब है। ये कथन अतिशयोक्ति नहीं है कि प्रेमचंद के उपन्यास जीवन की संपूर्णता, व्यापकता और वास्तविकता का अद्‌भुत चित्रण

है। द्विज जी लिखते हैं–

प्रेमचंद के उपन्यासों में सामयिकता की स्पष्ट छाप है। साथ ही सामयिकता के भीतर कला की चिरन्तनता भी विद्यमान है। प्रेमचंद की रचनाएँ सामयिक होकर भी सर्वकालीन हैं। इनका साहित्य आगे चलकर हमारे युग के इतिहास का भी काम करेगा। हमारी सामाजिक तथा राष्ट्रीय अवधारणाओं के स्वरूप परिवर्तन की जो चेष्टाएँ की जा रही हैं, उनमें हमारे जातीय इतिहास का स्वरूप बदल जाएगा। और आनेवाली पीढ़ी के लोग इन्हीं प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कर्मभूमि, गोदान आदि उपन्यासों के द्वारा हमारे युग की मूल प्रवृत्तियों का सच्चा परिचय प्राप्त करेंगे। क्योंकि प्रेमचंद साहित्य की उपादेयता का संबंध केवल हमारे वर्तमान से नहीं, भविष्य से भी जुड़ा हुआ है।

प्रेमचंद के उपन्यासों की भाषा–शैली और भावव्यंजना की द्विज जी ने सारगर्भित और विस्तृत विवेचना की है। भाषा की स्वाभाविकता प्रेमचंद की विशिष्टता है। द्विज जी के अनुसार– ''प्रेमचंद की भाषा की स्वाभाविकता का आधार है वस्तु, पात्र और देशकाल के साथ भाषा का अटूट मेल। ओज माधुर्य और प्रसाद ये तीनों गुण इनकी भाषा में है। पात्रों के स्वभाव के साथ तो इनकी भाषा का स्वभाव इतना मिला–जुला रहता है कि उनकी पारस्परिक संबंध सीमा में अस्वाभाविकता के लिए कोई स्थान ही नहीं है। जैसा पात्र वैसी भाषा।

कथा सम्राट प्रेमचंद नकली अनुभूतिवाले कलाकार नहीं थे। इसी कारण इनकी भाषा शैली अनुकरणीय है। सरल, स्वच्छ, सबल और कवित्वपूर्ण शैली का उदाहरण द्विज जी ने रंगभूमि की इन पंक्तियों में खोजा है–''अरावली की हरी–भरी झूमती हुई पहाड़ियों के दामन में जसवंत नगर यों सो रहा है, जैसे माता की गोद में बालक...।(पृ. 547)

द्विज जी लिखते हैं–''इनकी रचनाओं में कहीं–कहीं कविता का सा आनंद आता है। जहाँ–जहाँ इनकी भाषा ने कवित्व पूर्ण शैली का आश्रय ग्रहण किया है, वहाँ–वहाँ उसकी कोमलता, मार्मिकता एवं गंभीरता हमारे गद्य की शोभा बन गयी है। प्रेमचंद के भीतर सुकुमार भावनाओं की एक लोकोत्तर मधुरिमा भरी रहती है। जैसे कायाकल्प (पृ. 309)–''सागर के स्वच्छ निर्मल जल में तारे नाचते हैं, चाँद थिरकता है, लहरें गाती हैं। वहाँ देवता संध्या करते हैं। देवियाँ स्नान करती हैं....।''

द्विज जी ने प्रेमचंद की भाषा–शैली की विशेषता– 'अलंकार शोभा' तथा शब्दचित्रों की सजीवता को सोदाहरण प्रस्तुत किया है। जिससे इस समीक्षा ग्रंथ की उपयोगिता बढ़ गयी है। प्रेमचंद की भाषा–शैली का वैभव है–भावसौंदर्य, अनुभूति मूलक उक्तियाँ, सुंदर मुहावरे तथा काव्यगत सुकुमार सौष्ठव। मुहावरे तो प्रेमचंद की भाषा का प्राण है और अनुभूति भरे भावयुक्त अमर वाक्य भाषा की आत्मा का नाद। द्विज जी ने इसकी पुष्टि के लिए कई उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। जैसे–

''प्रेम केवल हृदयों को मिलाता है, देह पर उसका बस नहीं है।'' प्रेमाश्रम (पृ. 482)

''अनुराग स्फूर्ति का भंडार है।'' गबन (पृ. 13)

''प्रणय दुखों का आघात से ही विकास पाता है।'' निर्मला (पृ.203)

''विचारोत्कर्ष ही सौंदर्य का वास्तविक शृंगार है।'' रंगभूमि (पृ. 504)

''प्रेम बसन्त समीर है, द्वेष ग्रीष्म की लू।'' सेवासदन (पृ. 48)

''संतान वह कठिन परीक्षा है, जो ईश्वर ने मनुष्य को परखने के लिए गढ़ी है।'' कायाकल्प (पृ. 309)

''पराश्रय से बड़ी विपत्ति दुर्भाग्य के कोश में नहीं है।'' प्रतिज्ञा (पृ. 50)

''संसार के सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं।'' गोदान (पृ. 259) इत्यादि

प्रेमचंद की एक और विशेषता 'भाव और शैली का समन्वय' है। द्विज जी लिखते हैं। ''भावों के उत्कर्ष से प्रेमचंद की भाषा–शैली सजीव और उत्फुल्ल हो उठती है। इनकी भावाभिव्यक्ति की प्रणाली विवरणात्मक भी है और संकेतात्मक भी। अभिनयात्मक शैली का आश्रय ग्रहण कर इनकी भाषा बड़ी तत्परता से एक हृदय का भाव दूसरे हृदय तक पहुँचा सकती है।''

प्रेमचंद की कला का उद्देश्य क्या है?जीवन को परखने का प्रेमचंद का दृष्टिकोण कैसा है?इन प्रश्नों की पड़ताल के बाद द्विज जी का सारयुक्त कथन है–''प्रेमचंद जीवन की बाहरी घटनाओं का मनोरंजक विश्लेषण करते हुए भीतरी तत्वों की भी व्याख्या करते चलते हैं। जीवन से संबंध रखनेवाले सिद्धांतों की प्रेमचंद ने अवहेलना नहीं की। इनके उपन्यासों में जीवन की व्याख्या अथवा नैतिक सिद्धांतों का भलीभाँति प्रतिपादन हुआ है। उच्च आदर्श तथा पवित्र विचारों की छाया में चलनेवाली कल्पना ही साहित्य में 'सत्यं–शिवं–सुन्दरम्' की सृष्टि कर सकती है। प्रेमचंद की कृतियों में हम इसी प्रकार की मंगलमयी कल्पनाओं का प्राधान्य पाते हैं। प्रभावशाली नीति–शिक्षा एवं जीवन का वास्तविक सुदृढ़ संबंध इनके साहित्य में दृष्टिगोचर होता है। यही प्रेमचंद की कला का प्रधान उद्देश्य है। इनके उपन्यासों में उच्च आदर्श तथा नीति–शिक्षा का एक कलात्मक मूल्य है और सैदव बना रहेगा।''

वस्तुतः प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में कला के सुंदर मंगलमय स्वरूप का विधान किया है।

'प्रेमचंद की उपन्यास कला' का अंतिम भाग 'उपसंहार' साहित्यिक क्षेत्र के अन्य औपन्यासिकों के साथ प्रेमचंद की तुलना कर उनका स्थान निश्चित करता है। और वह स्थान है प्रेमचंद की हिन्दी के 'औपन्यासिक सम्राट' का। भारतीय भाषा और कथा–साहित्य के श्री–सम्वर्द्धन का श्रेय केवल प्रेमचंद को ही है। हिन्दी के औपन्यासिकों में इनका स्थान अद्वितीय है और जहाँ की भाषा हिन्दी नहीं, उन प्रांतों में भी प्रेमचंद साहित्य लोकप्रिय है। द्विज जी ने प्रेमचंद की तुलना जयशंकर प्रसाद, पं0 विश्वम्भर नाथ 'कौशिक', वृंदावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', जैनेन्द्र कुमार इत्यादि भारतीय विद्वान साहित्यकारों के साथ–साथ अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार 'टॉमस हार्डी', 'जॉन गॉल्सवर्दी', रूसी उपन्यासकार 'गोर्की' तथा बंगला के दो प्रसिद्ध लेखक शरच्चन्द्र और रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनाधर्मिता, शैली, भाषा तथा प्रभाव के आधार पर की है। द्विज जी ने लिखा है–''प्रेमचंद की रचना–पद्धति ने साहित्य कला के लिए आदर्श खड़ा कर दिया है, उसे हिला नहीं सकता। प्रेमचंदजी की कला, बाह्य उपकरणों सत्यं–शिवं–सुन्दरम् के कारण कुछ बातों में, औरों की कला से भले ही भिन्न दिख पड़े, किन्तु वस्तुतः उसकी आत्मा का भी स्वरूप वही है, जो विश्व के सभी श्रेष्ठ कलाकारों की कला में सदा सत्य सुन्दर और मंगलमय बना रहता है।''

पं0 जनार्दन प्र0 झा 'द्विज' रचित यह समीक्षात्मक ग्रंथ आज विभिन्न विश्वविद्यालयों के स्नातकोत्तर पाठयक्रम में शामिल है। सबसे बड़ी विडम्बना तो यह है कि बिहार के पाठ्यक्रम में ये दुर्लभ पुस्तक नहीं हैं। प्रेमचंद को अच्छी तरह जानने के लिए इस पुस्तक का अध्ययन आज भी सबसे उत्तम माना जाता है। एकत्र सभी महत्वपूर्ण जानकारियाँ सहज उपलब्ध हैं। और अंत में प्रेमचंद और उनके उपन्यासों के संबंध में द्विज जी की घोषणा–

''प्रेमचंद के उपन्यास भारत की उन गंभीर समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं, जिनका संबंध एकमात्र भारत के हितों से नहीं, सारे संसार के हितों से है। भारत की सुख स्वतंत्रता समस्त मानव जाति की सुख स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त करेगी। इसकी दुख–दीनता समूचे पृथ्वीमंडल पर मंडराती रहेगी। भारत हँसेगा तो दुनिया हँसेगी; यह रोयेगा तो दुनिया को भी रोते रहना पड़ेगा। इसी तरह जो साहित्य इसकी वर्तमान अवस्था से संबंध रखनेवाले सभी प्रकार के प्रश्नों पर विचार करने का अवसर देगा, विश्व साहित्य उसे कभी अपनी सीमा से बाहर रहने नहीं दे सकता। प्रेमचंद का साहित्य ऐसा ही है। अतः देश तथा विदेश के उच्च कोटि के साहित्यकारों में 'प्रेमचंद' का नाम लिया जाना सर्वथा स्वाभाविक है।''

जबतक साहित्यकाश में प्रेमचंद का नाम चन्द्रमा की तरह चमकता रहेगा, तबतक 'प्रेमचन्द की उपन्यास कला' के रचयिता 'द्विज' भी चमकते रहेंगे।

समीक्षा

तीस पार की नदियाँ–सत्या शर्मा

डॉ0 अशोक 'प्रियदर्शी'
राँची (झारखंड)
मो.–8789800843

पता नहीं, कवियशः प्रार्थियों को यह भ्रम हो जाता है कि छंद के बंध तो अब टूट ही गये हैं, तो सबसे आसान काम है कविता लिखना। जो भी आड़ा–तिरछा लिख दो उसे कविता समझ लो। ऐसे में शुद्ध कविताएँ जब सामने होती हैं, तब मन एक अबूझ उल्लास से भर जाता है। एक और स्वीकारोक्ति यहीं दर्ज कर रहा हूँ। यह विवाद अक्सर चलता है कि दलित–लेखन, नारी–लेखन आदि के अलग–अलग खाँचे क्यों बनाए जा रहे हैं। साहित्यकार तो परकाया–प्रवेश की जादूगरी जानता है, फिर पुरुष नारी मन को क्यों नहीं पढ़ सकते?या दलितों के दर्द को दलितेतर लेखक नहीं पहचान सकते?प्रेमचंद ने दलितों के दर्द को शिद्दत से नहीं पहचाना है?फिर उनके उपन्यास या उपन्यासों की 'होलिका' देश की राजधानी में क्यों जलाई गई?सत्या शर्मा 'कीर्ति की कविताओं को पढ़कर मेरा पूर्वाग्रह टूटा और मैंने जाना कि पुरुष कितना भी संवेदनशील हो, स्त्री मन के दर्द–दर्प को वह उस गहराई में उतरकर नहीं महसूस कर सकता, जिस तल्लीनता से स्त्री स्वयं अपने मन को पढ़ती–गुनती और अभिव्यक्त करती है। मैं श्रीमती कीर्ति के सद्यः प्रकाशित पहला कविता संग्रह 'तीस पार की नदियाँ' को पढ़ते हुए ये बातें सोच और कह रहा हूँ। यह संकलन नारी मन का ईमानदार, निश्छल और स्वच्छ आईना है। ऐसी कविताएँ आपको तालियाँ पीटने को नहीं उकसातीं, आपको विचारमग्न और स्तब्ध कर देती हैं। कविता वह जिसे पढ़कर थोड़ी देर के लिए मौन में डूब जाएँ।

इस संकलन पर कुछ कहने का मन जब मैंने बनाया तो इस सोच में पड़ गया कि इसे कौन–सा शीर्षक दूँ। विवाह के मंडप में सप्तपदी की रस्म होती है। नव परिणीत युगल अग्नि के सात फेरे लेते हैं और हर फेरे में वधू अपने पुरुष को प्रतिज्ञाबद्ध करना चाहती है–मसलन वह कहती है–'तीर्थ, व्रत, उद्यापन, यज्ञ, दान आदि यदि हे कांत, मेरे साथ करने का तुम वचन दो, तो मैं तुम्हारी बायीं ओर आती हूँ...आदि–आदि (परिणीता को वामांगी या वामांगिनी भी कहते हैं)। ऐसे ही वह और भी वचन उचारती है वधू, और पुरुष आश्वासन में केवल एक श्लोक पढ़ता है–''मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूँगा। यानी पुरुषसत्तात्मक समाज का पुरुष वचन देकर भी वचनबद्ध नहीं होता। दिनकरजी ने 'उर्वशी' में रानी औशीनरी की वेदना को यों वाणी दी है–'गृहिणी जाती हार दाँव, संपूर्ण समर्पण करके।' पति और पतिगृह के प्रति पूर्ण समर्पिता स्त्री के मन को पीड़ा आजीवन मथती रहती है और फिर भी वह हँसती–मुस्कुराती रहती है।

इस आलेख को जो शीर्षक मैंने दिया है उसका कारण है। सत्याजी ने अपनी 57 कविताओं को सात उपशीर्षकों में बाँटा है–मायके की चौखट (पाँच कविताएँ), स्त्रियाँ गढ़ती है खाली पलों में भविष्य के सुनहरे सपने (दस कविताएँ), बुद्ध हो जाना कहाँ सरल है (आठ कविताएँ), तुम्हारे मन के किवाड़ पर दस्तक होती होगी ना (आठ कविताएँ), जन्म लेना कविता का युगों से गुजर जाने सा होता है (तेरह कविताएँ), अब रातें भी पूछती हैं नींद बेचनी तो नहीं (छः कविताएँ), एक बार फिर आयी थी गौरैया (सात कविताएँ) कवयित्री के ये सात वचन।

ये कविताएँ आप स्वयं पढ़ें, मैं नमूने के रूप में यहाँ–वहाँ से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ। भाई! अब जब मैं नहीं रहती/ तेरे घर–आँगन/फिर भी बहुत याद आता है, मुझे तेरा वो घर–आंगन याने वह घर–आंगन जो कल तक लड़की का भी था, अब सिर्फ उसके भाई का है और लड़की के मन–मस्तिष्क में मायके का वह घर–आंगन ताउम्र बसा रहता है, हर अनुमति के साथ।

याद आते हैं पिता, जिन्हें जाने कितना कुछ कहना चाहती थी लड़की, कह नहीं पाई। याद आती है माँ, जिसके केश जाने कब श्वेत हो गये–''मैं दूसरों के मनोभावों में ढूंढ रही थी कविता/ और इसी बीच जाने कब/ मेरे और मेरी कविता के बीच/ बूढ़ी हो गयी माँ।''

और अब नई भूमिका में ससुरैतीन लड़की–''पति के सर से/ उतार फेंकती है परेशानियों के बादल/ सब्जियों की छौंक संग/ सोच लेती है अनगिनत सी योजनाएँ/...चालीस–पचास/ उम्र की प्रौढ़ा होती स्त्रियाँ/ कभी–कभी होती है उदास/ शायद हार्मोन्स/ अवसाद बन छा जाते हैं/ मन मस्तिष्क पर...।'' (और इस मेनोपॉज परिवर्तन को समझ पाने में नाकाम पुरुष उस स्त्री का सहारा दे पाता है, ना सहानुभूति के दो शब्द बोल पाता है।) और फिर उस स्त्री की पीड़ा जो माँ बनना चाहती है, पर माँ नहीं बन पाती। (कभी पुरुष में हो तब भी सारा अपराध लड़की के सर मढ़ा जाता है–''खिड़की के पल्ले टँगी/ अपने आत्मसम्मान की चुन्नी ओढ़/ पुनः बन जाती है शरीर/ ... और इस तरह वस्त्र और शरीर के/ अनवरत खेल/ खेलते–खेलते/ जी लेती है एक पूरी उम्र/ बिना जाने कि एक/ स्त्री होना क्या होता है/ और हाँ, स्त्रियों के लिए नदियों का रूपक अत्यन्त सार्थक और अर्थगर्भित है। नदी को आपने जाना है, तो स्त्री के जीवन को समझ सकें शायद!

फिर बुद्धत्व की बात 'मैं बुद्ध नहीं हूँ/ पर बुद्ध होना चाहती हूँ...पर, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों की/ पकड़ से छूटता मेरा मन/ मोहमाया की जंजीरें तोड़/ नहीं पाता...।''

अब चौथी सप्तपदी। रिश्तों को बचाए रखने, उसकी जीवंतता और सुवास को बनाए–बचाए रखने की जद्दोजहद। प्रेम के नाजुक अहसास को पकड़ने की यह कोशिश मन को छूती है।'' ....कि हाँ, अब सोचती हूँ/ लौट भी आऊँ। कि इस बार की सर्दी में बर्फ न बन जाए/ हमारे रिश्ते की/ गुनगुनी सी गर्माहट।'' और दूसरे पक्ष की संवेदना को भी पकड़ने का प्रयास यहाँ–'' ... सुनो/ अगर मैं सचमुच कवि होता/ तो किताबों की नाव बना/ ले जाता तुम्हें डल झील/ और उसके चश्में में देखता/ तुम्हारे माथे की चमकती सी बिंदी... ।'' 'अनकही ख्वाहिशों' शीर्षक की इस कविता को पढ़कर ग़ालिब याद आए–''हजारों ख्वाहिशें ऐसी कि हर ख्वाहिश पे दम निकले, बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।'' ख्वाहिशें शीर्षक की एक और कविता है इसी खंड में।

पाँचवाँ खंड/ सच्ची और ईमानदार कविता अपने समय से भी टकराती हैं, केवल मायावी कल्पनाओं की दुनिया में नहीं घूमती–''अभी जब पूरा विश्व/ व्यथित है वायरस के दंश से/ इस विकट घड़ी में/ रोज ही टूट रही है कितनी की आशाएँ/ कितने ही विश्वास रोज/ जब चारों ओर रेप से पीड़ित बच्चियों के चीत्कार से/ तुम्हारे कान सुन्न हो जाएँ/ तब तुम मेरी वॉल पर देख सको/ खूबसूरत तितली के पीछे दौड़ती/ परियों जैसे बच्चियाँ/ जिन्हें देख कामुक हृदय में भी/ झलक आए वात्सल्य भरी/ मुस्कान.../ इसलिए मैं अपनी वॉल पर/ लिखती रहूँगी/ प्रेम से पगी/ अनगिनत कविताएँ।''

तो कविता है क्या, बनती कैसे है?–''हाँ, कविता/ तलाशती रहती है किसी भावुक/ अशांत और एकांत हृदय की कोख/ जहाँ बार–बार/ अनवरत जन्म लेती रहे कविता।''

'तुम ही बोलो' शीर्षक कविता का भी अपना रंग है–''पूछते हो तुम–ठीक तो हो ना?/ तब इसमें मैं/ ...ढूँढ़ती हूँ/ अव्यक्त कोई उत्तर/ कि अनकहे ही समझ सको तुम...।''

कवयित्री ने सोलह वर्ष की आयु में लिखी थी 'आईना' शीर्षक

कविता। जिसमें उसने चटके हुए आईने से अपने पिता के चेहरे पर झुर्रियों से तुलना की है।

उपखंड छह में लीक से हटी कुछ कविताओं का अपना रंग है–''सेल्समैन, किन्नर विमर्श और मन को गहरे अवसाद से भर देने वाली कविता–'रेप–पीड़िता बेटी के पिता का दर्द'...मेरी नौ साल की बेटी/ कहीं खो गयी है/ खेलना भूल गयी है/ हँसना भूल गयी है/ जीना भूल गयी है...।''

और अंत में घर की गौरैया का रूठ जाना, क्योंकि महानगरों ने उनके चहकने के लिए कोई जगह ही नहीं छोड़ी है। एक प्रसिद्ध लोकगीत है–मायके को छोड़ चली बेटी पिता से मनुहार करती है कि बाबा, आंगन के नीम का पेड़ मत काटना–कटवाना, क्योंकि उसपर चिड़ियों का बसेरा है।

इस सातवें शीर्षक की, सप्तपदी के सातवें फेरे की सात कविताओं में किसे बेहतर कहें और किसे कमतर, निर्णय करना कठिन है। तीस पार की हो जाने पर भी अपना घर–आँगन छोड़ते समय नदियों की आँखें नम हो जाती हैं, इस संकलन में बहती 'नदी' भी मानो आखिरी पड़ाव पर आकर कहीं अधिक भावार्द्र हो गयी है। नदी का भी तो एक प्रकार से कायांतरण होता है। शिशु को जन्म देकर, लेकिन तुरंत सारी पुरानी पीड़ा भूलकर वह उत्सव लीन हो जाती है–''आज फिर झुक गयी है/ आम की डाली/ फिर नीम की टहनियों पर/ घुघरुओं से सज गये हैं नन्हें निंबोले/...हाँ यह कायांतरण है/ यह उत्सव है/ मधुर और मृदुल होने का...।'' याद करें निराला को–''सखी री ये डाल/ वसन वासंती लेगी।''

सृजन की पीड़ा की पंक्तियों को उद्धृत करने का मोह छोड़ता हूँ। इन दिनों जो बाग–बगीचों, वृक्ष–वनस्पतियों को उजाड़कर 'मॉल' उगाने का, माल बनाने का पैशाचिक खेल चल रहा है, उससे कवयित्री का मन व्यथित है फिर भी मन में आशा है...''हाँ, इस पल/ जब लिख रही हूँ दर्द/ तब एक उम्मीद पनप रही है/ पुनर्जागरण की.../'' किन्तु यह स्वयं को, समाज को जीते रहने का संवल देने की कोशिश भर है। पेड़–पहाड़ उजड़ने से 'नदियों' का उदास होना स्वाभाविक है।

अपार्टमेंट के जंगल में आँगन कहाँ, जहाँ गौरैया फुदके।''गौरैया तुम फिर आना'' बार–बार आती रही गौरैया, किन्तु उसे उसके हिस्से का आकाश नहीं दिखा, लौट गई।

एक कविता है 'खेत का मातृत्व सुख' हमने अर्धनारीश्वर की कल्पना की है, नर खेत अपने पुरुष शरीर में भी बीजों के भ्रूण को धारण कर पीड़ा में भी आनंद उठाता है।

कहने को मात्र इतना शेष रह जाता है कि श्रीमती 'कीर्ति' की कविताएँ उन्हें कीर्ति दिलाएँगी ही, लेकिन हमारा पढ़ने–लिखने वाला समाज भी मशीनी हो गया है। ये कविताएँ मशीनी तक पहुँचे तो शायद उसकी आदमीयत लौटे। इन कविताओं पे इतनी शिकायत हो सकती है कि ये लंबी हैं, विस्तार दे जाती है। थोड़ी और कसावट होती तो बेहतर होती।

पुस्तक तीसपार की नदियाँ, बोधि प्रकाशन, जयपुर, लेखिका 'सत्या शर्मा 'कीर्ति', मूल्य 150/–

ग़ज़लें

रमेश मनोहरा,
शीतला माता गली, जावरा (म.प्र.)
जिला रतलाम,
मो. 9479662215

रखना सुरक्षा तुम अपने मकान की
पकड़ मजबूत रख अपने कमान की

इस कदर पड़ा महँगाई का असर
होती ना आवभगत मेहमान की

पेट उनका हो गया फुलकर ही बड़ा
वे खा जाते हैं राशि अनुदान की

जंगली भेड़िये बस गये शहरों में
अब परवाह नहीं करते इंसान की

प्रतिभा उनमें शून्य है फिर भी देख
तिकड़म लगाते हैं वे सम्मान की

अन्न उपजाकर करता है महान काम
भरपूर हो तारीफ उस किसान की

मालूम नहीं है उसको कुछ भी रमेश
फिर भी करते हैं बातें खलिहान की।

2.

बदल गया आदमी का कितना स्वभाव है
उसका तो काले पैसों से अब लगाव है।

खतम कर दिया रिश्ते–नातों को सबने
अब तो दिलों में यहाँ गहरा मनमुटाव है

इस दौर का ऐसा असर पड़ा है उसी पर
उसे झूठी बातों पर अधिक झुकाव है

हाल झुग्गी झोपड़ियों का देखिए जनाव
जहाँ पर अभाव का जलता हुआ अलाव है

बारुद के ढेर पर बैठी हैं ये दुनिया
हरेक के पास शस्त्रों का रख–रखाव है

मिलते नहीं विपरीत ध्रुव आपस में कभी
युगों से दोनों के बीच में टकराव है।

मिटी नहीं अमीरी–गरीबी की खाई भी
युगों से आज तक रमेश जी भेद भाव है।

समीक्षा

कुहासा मार डालेगा
हिन्दी ग़ज़ल में प्रतिरोध की अनुगूँज

हरेराम समीप,
फरीदाबाद–121006
मो0–9871691313

डॉ.सुनील त्रिपाठी 'निराला' भारत के राष्ट्रपति द्वय डॉ.ए.पी.जे अब्दुल कलाम और श्रीमती प्रतिभा पाटिल जी द्वारा सम्मानित शिक्षा तथा अपने क्षेत्र भिण्ड, मध्यप्रदेश के लोकप्रिय जुझारू कवि हैं। आज जो ग़ज़लकार अपने ग़ज़ल लेखन में न केवल उर्दू की परम्परागत रूढ़ियों को तोड़ रहे हैं, बल्कि सामाजिक प्रतिबद्धता की एक नई जमीन भी तैयार कर रहे हैं। उनमें डॉ.सुनील त्रिपाठी 'निराला' उल्लेखनीय नाम है। वे कबीर, निराला, दुष्यन्त और अदम गौड़वी की विद्रोही परंपरा के ऊर्जावान ग़ज़लकार केरूप में सामने आते हैं। उनकी रचनाएँ सन् 1982 से देश की अधिकांश प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में निरंतर प्रकाशित होती आ रही है। वे 'उजास' साहित्यिक पत्रिका का भी अनेक वर्षों से संपादन कर रहे हैं, पिछले वर्ष उनका ग़ज़ल संग्रह 'कुहासा मार डालेगा' प्रकाशित हुआ है, जिसमें 71 बेबाक किन्तु सार्थक ग़ज़लें संगृहीत हैं।

हिन्दी ग़ज़ल लेखन ने आज व्यापक रूप से सामाजिकता की राह पकड़ ली है। सामाजिक विषमताओं और विद्रूपताओं के प्रति असहमति, अस्वीकार, प्रतिकार, विरोध या प्रतिरोध का स्वर ही आज की हिन्दी ग़ज़ल की पहचान है और श्री निराला की ग़ज़लें इसमें निस्संदेह रखी जा सकती हैं। विशेष बात यह है कि इन ग़ज़लों में आमजन की पीड़ा, उनकी मुश्किलें और इन मुश्किलों के कारक और कारणों की बातें भी ठीक उसी आमजन की सहज और सम्प्रेषणीय भाषा में की गई हैं, जिसके कारण वे हमें अपनी सी और अपने निकट की लगती हैं। इस संदर्भ में स्वयं उनका आत्मकथ्य यहाँ उल्लेखनीय है। वे संग्रह में लिखते हैं–''भाषाई मकड़जाल से बाहर निकलना प्रत्येक कलमकार का फर्ज़ बनता है, भाषा के प्रयोग की पूरी आजादी होनी चाहिए, क्योंकि भाषा वही है, जिसे जन–मान्यता प्राप्त हो। लेखन और साहित्य लेखन में झिल्लियांतर है, कविता में प्रवाहशीलता सतत और अनवरत होती है। यही सद्गुण कविता का प्राणतत्व है और यही इसकी स्वीकार्यता का आधार भी।''

दरअसल डॉ. निराला की ये ग़ज़लें उनकी वैयक्तिक और सामाजिक अनुभूतियों की सार्थक अभिव्यक्ति के रूप में उतरी हैं, उन्होंने अपने परिवेश में जो देखा, भोगा और महसूस किया है, उससे जो प्रश्नाकुलता आई, जिस बेचैनी ने उन्हें मथा है, वे जानते हैं कि आजादी के बाद समाज में व्याप्त अभावों, अंधविश्वासों, कुरीतियों और भेदभावों को समाप्त करने के लिए शिक्षा, साहित्य और आर्थिक विकास को सशक्त माध्यम बनाया गया, लेकिन स्वार्थपूर्ण एवं कुत्सित राजनीति ने आजादी के उन सपनों को चकनाचूर कर दिया। डॉ. निराला के हृदय में इन सपनों के टूटने की टीस ग़ज़लों में साफ–साफ सुनाई देती है। सच तो यह है कि ये ग़ज़लें उसी आत्मसंघर्ष की उत्पाद बनकर उतरी हैं। वे आज भी आजाद भारत के उन्हीं सपनों को साकार करने के लिए प्रतिबद्ध हैं, जो हमारे शहीदों ने देखे थे। चूँकि वे शिक्षक हैं, इसलिए नवोत्थान के लिए शिक्षा, नई सोच, दलित चेतना, नारी चेतना के विकास जैसे अनेक जरूरी विषयों पर जनमानस में अलख जगाने का भी काम वे अपनी ग़ज़लों के माध्यम से करना चाहते हैं। स्वाभाविक है कि आज की इन ग़ज़लों के केन्द्र में आज का जीवन और समकालीन परिस्थितियाँ हैं। उनका ग्रामीण परिवेश है अर्थात् ये उनके जीवन से जुड़ी हुई ग़ज़लें हैं। ये जो सवाल उठाती हैं, वे केवल उनके ही नहीं हमारे भी हैं, इसलिए इनके उत्तर हमें ही तलाशना है। आइए इसी संदर्भ को लेकर हम इस संग्रह में प्रवेश करते हैं और डॉ. निराला की काव्यदृष्टि और काव्य सरोकारों से परिचित होने का प्रयास करते हैं, तो सबसे पहले उनके आत्मकथ्य के रूप में आये चंद शेर गौरतलब है–

अपनी जमीन अपने ख्यालात छोड़ दूँ
जो बोलते नहीं हैं उनकी बात छोड़ दूँ
इमारत की बुलंदी में, तुम्हें रंगत नजर आती
मुझे हर ईंट में, मजदूर की लोहू नजर आए
खूशबू की तरह हमको, बिखरने की जिद रही
हाँ बेखुदी में हद से, गुजरने की जिद रही।

कवि सदैव अपने समय, समाज और संस्कृति का सचेतन द्रष्टा होता है। वह अपने वर्तमान को देखता, परखता भी है और उसका साक्षात्कार भी लेता रहता है–

भूख से बेहाल हैं, बच्चे हमारे मुल्क में,
मुद्दतों से सिर्फ, दस्तरखां बिछाया जा रहा
बताओ और कबतक, सब्र का शरबत पियें
गरीबी के ये पानी, बताशा मार डालेगा
जिनका हर मौसम, फुटपाथों पर बीते
आजादी कैसी होती, है उनसे पूछो
दिमागों पर जमा है, कुहासा मार डालेगा
यह हिंदू और मुस्लिम का, तमाशा मार डालेगा।

ग़ज़लकार यहाँ सवाल करता है कि हमें आजादी तो मिली है, लेकिन अन्याय, असमानता और अत्याचार झेलने के लिए आज भी क्यों आदमी विवश है?इस संदर्भ में कटाक्ष करते उनके शेर हमारे मन मस्तिष्क को झिंझोड़कर रख देते हैं–

''अमीरों के मुकद्दर में, बहारों में खड़ा होना,
गरीबों के मुकद्दर में, कतारों में खड़ा होना
कोठियों में नूर–रंगत, के नजारे आम थे,
खोलियों में हर समय, फांकाकशी देखी गई
अभी भी रोटियाँ दो जून की, हासिल नहीं सबको
तुम्हारे आंकड़ों में, भूख से मरता नहीं कोई।''

विकास के आंकड़ों की बात पर वे गाँव की दशा पर गहरी चिंता व्यक्त करते हुए कहते हैं–

ये तरक्की है अगर तो फिर मुबारक आपको
जगमगाती राजधानी, गाँव में है तीरगी
तुमने भले ही बाँट दी, दुनिया को नेमतें
मुफलिस के घरों में तो, निवाले नहीं गए।

संसार के प्रत्येक मनुष्य की बुनियादी जरूरत है–भूख, समाज के जिम्मेदार लोगों का यह पहला दायित्व होना चाहिए कि इस संसार में कोई व्यक्ति भूखा न रहे, लेकिन हमारे देश के शासक और जनप्रतिनिधि आजतक इस जिम्मेदारी को नहीं निभा पाए। तब कवि प्रश्नाकूल होकर पूछता है–

जब हमारे पेट खाली हो, अधर सूखे रहें।
तब डिजीटल इंडिया को, चूम लें या चाट लें
भूख का ईमान क्या है, भूख का है धर्म क्या
भूख है यह देह के, व्यापार तक ले जाएगी।

भूख गरीबी के साथ दूसरी और सामाजिक बुराइयाँ जैसे अशिक्षा, अंधविश्वास, जातिवाद आदि की जड़ें और गहरी हो गयी हैं–

आओ दिखलाएँ तुम्हें, इस देश की असली दशा,
जातियों के नाम पर, अब भी सताया जा रहा
देश प्रेमी भावनाएँ, कैद नारों में हुई
देश बौना हो रहा है, जातियों के सामने
तरीका खूब अपनाया, चुनावी दौर में सबने
कहीं मजहब खपाया है, कहीं पर जातियाँ रख दीं।

इसी जातिवाद और कट्टरवाद से उपजा धार्मिक साम्प्रदायिकता का रोग अब कैंसर की तरह हमारे समाज को दुर्बल कर रहा है–

हमारे भाईचारे को, नजर किसकी लगी बोलो
जरा सी बात पर ही, खून की ये धार बहती है
कल तलक जो धर्म का, झंडा लिये थे मंच पर
पोल जब उनकी खुली, तो दागियों में आ गये।

आज सांप्रदायिकता का वैश्विक रूप बनकर आतंकवाद का चारों ओर जो भयावह वातावरण बना हुआ है, वह भी गज़लकार को बेचैन करता है, उसने ऐसे अनेक हादसे देखे हैं, जो बर्बरता और हिंसा के भयानकतम दृश्य बनकर उसके सामने से गुजरे हैं–

बस जरा सी बात पर, ये खौफ ये दहशत है क्यों
मौत के आगे बता, कातिल कहाँ ले जाएगा।

इतनी शिक्षा, इतनी आधुनिकता और इतने विकास के बावजूद समाज में अंधविश्वास और अंधश्रद्धा का भूत नहीं खत्म हुआ है। इसपर कवि व्यंग्य का प्रहार करता हुआ कहता है–

जाने कितना दूध पी गई, पत्थर की ये प्रतिमाएँ
फुटपाथों पर भीख माँगते, बेचारे इंसान मिले।

हमारे गाँव का जीवन प्रकृति पर निर्भर रहता है, मौसम के असंतुलन से वहाँ कभी सूखा, कभी अकाल उसे सहना पड़ता है और जब वह कर्ज़ के बोझ से दब जाता है तो आत्महत्या करता है। इस त्रासदी पर यह शेर देखें–

यह जमीन तिश्रगी के दौर से गुजर रही
खेतिहर किसान मौत को गले लगा रहे।

आधुनिक जीवन की चकाचौंध में आसक्त मध्यम वर्ग ने आसानी से अमीर बनने के लिए भ्रष्टाचार का अनैतिक रास्ता अपना लिया है। गज़लकार यह देखकर परेशान है कि गरीब और कमजोर इस भ्रष्टाचार का सबसे आसान शिकार बनते हैं–

बेचकर इज्जत वतन की, खा रहे हैं रहनुमा
गिद्ध सी नजरें गड़ा रक्खी, हमारे कौर पर।

आज धन की होड़ ने हमारे जीवनमूल्यों को, आत्मीय रिश्तों को और इंसानियत की भावना को ताख पर रख दिया है, तब कवि उन लालची लोगों से पूछता है–

ये साथ में क्या माल, ज़र जेवर मकां ले जाएगा
ये हवस ये शौक, पागलपन कहाँ ले जाएगा।

लेकिन कवि इन सभी समस्याओं के लिए अपने रहनुमाओं को भी दोषी ठहराता है कि वे इन बुराइयों का समाधान नहीं तलाश पाये अर्थात् कवि वर्तमान राजनीति, उसमें निहित चुनाव व्यवस्था आदि पर प्रश्न करता है। यहाँ कवि की राजनीतिक चेतना मौलिक और स्पष्ट नजर आती हैं। वे कहते हैं–राजनीति पवित्र कर्म है, लेकिन जबसे राजनीति का दुरुपयोग शुरू हुआ नैतिकता और कानून की भी धज्जियाँ उड़ गयीं। यह शेर देखिये–

बदसलूकी आ गई, जबसे सियासत के यहाँ
सभ्यता गुमसुम खड़ी है, कायदा हैरान है
सियासत है कि हालत को, बदलने ही नहीं देती
कुचालों की ये मक्खी, जख्म भरने ही नहीं देती।

भ्रष्टाचार समाज की सचमुच वह कुरीति है, जो समाज को अंदर से खोखला कर देती है। यह भ्रष्टाचार कलुषित राजनीति के गर्भ से पैदा होता है। पद–लिप्सा ने राजनीति को लगातार भ्रष्ट से और अधिक भ्रष्ट बना दिया है–

एक दफ़ा कुर्सी मिली, तो सब गरीबी मिट गई
खूब फलता फूलता, ये मस्त कारोबार है।

जनसेवक बनकर वोट लेकर वे राजधानियों में बादशाह बन जाते हैं, जहाँ दरबारियों से घिर जाते हैं और जनता को भूल जाते हैं–

नाम के हैं लोकसेवक, काम से हैं बादशाह
अब सदन ऐसा लगे, जो राजसी दरबार है।

धनवाद पूरी दुनिया को आज एक मंदी में तब्दील कर रहा है। हम सब आज बुरी तरह से बाजारवाद के गिरफ्त में हैं, जब सरकार व्यापारियों के इशारे पर चलती हो–

रियाया का सुकूनोचैन, अक्सर छीन लेता है
गरीबों के निवालों को, सितमगर छीन लेता है।

विकास के नाम पर नगरीय विस्तार ने देश को गाँव और शहर की दो दुनियाओं, दो सभ्यताओं में बदल दिया है, जैसे स्वर्ग और नरक हों। आज गाँवों के बढ़ते पलायन के कारण धीरे–धीरे शहर के फुटपाथ गाँव से आये विस्थापितों से पट गये हैं।

खून के आँसू लिये, ये रात रोयी रातभार,
लोग भूखे सो रहे हैं, आज भी फुटपाथ पर।

लेकिन यह देखकर पीड़ा असहनीय हो गई है। स्थितियों में कही कोई सुधार न होते देख असंतोष का स्वर बुलंद होने लगा है और व्यवस्था परिवर्तन की आवाज आसमान में गूँजने लगी है। यह प्रतिरोध का स्वर अब गज़ल में ढलने लगा है। देखिये ये शेर–

परिंदे कबतक वंचित रहेंगे, आबोदानों से
चलो यह पूछ लेते हैं, चमन के हुक्मरानों से
तरीके से कभी भी मुद्दा उठता नहीं कोई
गरीबों के हकों की, पैरवी करता नहीं कोई
वक्त की दस्तक समझने, का हुनर पैदा करो,
लौटकर आता नहीं, जो हाथ से अवसर गया।

कवि सचेत करते हुए आमजन से कह रहा है कि केवल एक सत्ता परिवर्तन से ये न समझा जाए कि पूर्ण लोकतंत्र की प्राप्ति हो गयी है, क्योंकि अभी अनेक संघर्ष हमें आगे करने हैं, जहाँ इंसानियत के खिलाफ चलती साजिशों से मुकाबला करना है–

अभी अंजाम भी चर्चाएँ करना, गैरवाजिब है
चरागों की हवाओं से अभी तो जंग जारी है।

लेकिन चारों ओर जनता अब नये विकल्प की तलाश करना शुरू कर दी है...क्रांति की सुगबुगाहट होने लगी है और वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था से जनता मोहभंग कर यूँ बाहर आने लगी है–

अब तो पाई पाई का, हमें हिसाब चाहिए
इंकलाब, इंकलाब, इंकलाब चाहिए
बस्तियों में अंधकार, है घना जमाने से
हर गली पुकारती है, आफताब चाहिए
हर मुफलिस को रोटी, कपड़ा घर दे दे
ऐसा इक भगवान चाहिए, दिलवा दो।

सच्ची देशभक्ति को डॉ. निराला इश्क की तरह पवित्र मानते हैं। वे ऐसे कवियों की तलाश करते हैं, जिन्हें मुल्क से प्यार हो–

जिन्हें मुल्क से है मोहब्बतें, जिन्हें आदमी से है आशिकी
वो जो गीत गाए हैं प्यार के, उन शायरों की तलाश है।

डॉ. निराला सदैव गरीब, मजदूर और वंचित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति का भाव रखते हैं। श्रम की महत्ता बताते हुए उनका यह शेर अविस्मरणीय है–

चमक लानी है जीवन में, तो श्रम का मंत्र अपनाओ
दुआओं के सहारे से, कहीं किस्मत बदलती है?

मानवता या इंसानियत कविता का धर्म है। कवि पूरे संसार का हितैषी होता है, इसलिए वह सबका भला चाहता है–

मुरझाए चेहरे को रौनक, अधरों को मुस्कान मिले
भूखे को रोटी मिल जाए, तो समझो भगवान मिले।

उम्मीद जीवन का प्राणतत्व होती है। जबतक जीवन है उम्मीद सदैव साथ रहेगी। इस संघर्ष का अंत होगा, यह उम्मीद ही आदमी की जिजीविषा को शक्ति देती है–

आएगी फिर से कोई सदा, ये यकीन है
लम्हे कभी तो खत्म होंगे, इंतजार के।

और अंत में निराला जी के अपना काव्य परिचय देते हुए ये दो शेर–

फकीराई मेरा बाना, खुशी ओ गम बराबर है
निराला का असर मुझमें, कबीरा की रवायत हूँ।

फकत एक आइना हूँ, पर जमाने की हकीकत हूँ,
तसल्ली से मुझे पढ़िए, मैं पैगामे मोहब्बत हूँ।

वास्तव में डॉ. निराला एक पक्षधर ग़ज़लकार है। उनकी पक्षधरता जीवन के प्रति है, उस आम आदमी की बदहाली के प्रति है, जो स्थितियों से जूझ रहा है, उन्हें वर्तमान परिस्थितियों की गहरी समझ है, इसलिए उनमें बेबाक कहने का हौसला भी है। इतना ही नहीं वे इस हौसले के साथ संघर्ष में भी पूरा यकीन रखते हैं, इसीलिए इन्कलाब की बात करते हैं और परिवर्तन की अदम्य आकांक्षा भी रखते हैं। डॉ. निराला सदैव प्रगतिशील मानव मूल्यों के लिए संघर्षरत दिखाई देते हैं। इन ग़ज़लों में ग़ज़ल की कारीगरी से ज्यादा उनका व्यंग्यपूर्ण कहने का लहजा अधिक आकर्षित करता है। मुझे पूरा विश्वास है कि यह ग़ज़ल संग्रह 'कुहासा मार डालेगा' लोगों के दिल में अपना स्थान बनाएगा और ग़ज़लकारों में चर्चित होगा।

कविताएँ

मनोरंजन सहाय सक्सेना
मो. 9461093077

'तोड़कर कारा समय की'

तोड़कर कारा समय की
नील सागर सम नयन में
प्रिय प्रतीक्षा में उमड़ती
अश्रु की
अविराम लहरें
कर न पायी दर्श प्रिय का
थक गईं कातर पुकारें
कंठ में अवरुद्ध होकर
पर न पाईं
टेर प्रिय को
दिन ढला गोधूल में
हरि मंदिरों में
आरती के बोल संग
शंख का गुरु नाद गूंजा
इन्हीं में क्षय हो गयीं
अविरल पुकारें
कर दिया अनसुना उसने
प्रीत का वह गीत
उसको था बुलाता
लौटकर आ जा
बहुत दूरगम्य है पथ
और तेरे पाँव कब के
थक चुके हैं
है उदधि गहरा
तेरी है तरणि जर्जर
और तेरी
दृष्टि धुंधली हो चुकी है
इसलिए तू पार जाकर
पा नहीं सकता है मंजिल
दूर है वो
पर न आया लौटकर वह
चल रहा था अथक अविरल
लक्ष्य लेकर
लांघकर सागर,
मरुस्थल या महीधर
उसे तो बस
स्वयं में
मैं कौन हूँ की
खोज प्रेरित कर रही थी
जैसे कस्तूरी हिरण
निज नाभि स्थित
गंध के उस स्तोत्र को
उन्मत्त होकर खोजता है
और वन–वन डोलता है
खोजता था वह स्वयं को
स्वयं में ही
तोड़कर सब स्नेह बन्धन
और जल, थल या कि नभ संग
तोड़कर कारा समय की।

समीक्षा

उमेदा-एक योद्धा नर्तकी
एक दस्तावेजी उपन्यास

दीपक गिरकर
कनाडिया रोड, इंदौर
मो0–9425067036

आकाश माथुर का ऐतिहासिक उपन्यास 'उमेदा–एक योद्धा नर्तकी' इन दिनों काफी चर्चा में है। इस उपन्यास के पूर्व आकाश माथुर की दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस उपन्यास में आकाश ने एक ऐसे योद्धा पर अपनी कलम चलाई है, जिसका उल्लेख अधिक नहीं है। यह उपन्यास कुँवर चैन सिंह और नर्तकी उमेदा की शहादत का दस्तावेज है। लेखक ने इस उपन्यास को बहुत ही रोचक तरीके से प्रस्तुत किया है। उपन्यास में नरसिंहगढ़ के राजा सोभाग सिंह महाराज के पुत्र कुँवर चैन सिंह, योद्धा नर्तकी उमेदा की कहानी है। 'उमेदा–एक योद्धा नर्तकी' उपन्यास मैं वर्ष 1681 से वर्ष 1824 तक के इतिहास का वर्णन किया गया है। उस समय देश छोटे–छोटे राज्यों व रियासतों में विभाजित था। इन राज्यों के राजा एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए आपस में लड़ते रहते थे। इसी का लाभ अंग्रेजों को मिला। उपन्यास के कथानक में रोचकता, मौलिकता, स्वाभाविकता, सम्बद्धता, जिज्ञासा आदि सभी गुण मौजूद हैं। इस उपन्यास में कुँवर चैन सिंह और योद्धा नर्तकी उमेदा का अंग्रेजों से युद्ध, नरसिंहगढ़ किले का चित्रण, सेनाओं का प्रबंध, राजाओं के परस्पर युद्ध, पेशवा तथा होल्कर सियासत, अंग्रेजों द्वारा राजा, महाराजाओं और पेशवा व होल्कर राजाओं के साथ संधि का चित्रण और लार्ड हेस्टिंग्स की कार्यशैली व अंग्रेजों की विस्तारवादी नीति का चित्रण मिलता है। उपन्यास इतिहास की कई वास्तविक जानकारियों से अवगत कराता है। यह ऐतिहासिक उपन्यास 1857 की क्रान्ति से तैंतीस साल पहले 1824 में अंग्रेजों के खिलाफ क्रान्ति का बिगुल फूँकनेवाले पहले क्रांतिकारियों–कुँवर चैन सिंह, उमेदा, हिम्मत खान, बहादुर खान जैसे वीरों का कालजयी दस्तावेज है। इस उपन्यास की यह मुख्य घटना अभी तक इतिहास के हाशिये पर ही दर्ज हो पाई थी, लेकिन आकाश माथुर ने इस घटना पर एक पूरा उपन्यास लिखकर अमर शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि दी है। एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाक्रम को लगभग भुला दिया गया था। इसे आकाश माथुर ने पठनीयता और कथात्मकता के साथ जिस तरह इस पुस्तक में विस्तार दिया है, इसके लिए कथाकार आकाश माथुर बधाई और प्रशंसा के पात्र हैं। इस उपन्यास का संदेश है–अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए वीरतापूर्वक मुकाबला करना और देश के अमर शहीदों को सम्मान देना। लेखक इस संदेश को पाठकों तक पहुँचाने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। कथानक में एक ओर पात्रों के अद्‌भुत शौर्य, देशप्रेम, लगन और बलिदान जैसे गुणों का चित्रण हैं तो दूसरी ओर सामंती परिवेश में होनेवाले षड़यंत्रों, स्वार्थसिद्धि, छल आदि को भी चित्रित किया गया है। 'उमेदा–एक योद्धा नर्तकी' अद्‌भुत उपन्यास है, इसमें राजा महाराजाओं के जीवन के विविध पक्षों को सुंदर ढंग से पिरोया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में राजाओं के दरबार से लेकर नर्तकी के आवास तक, आभूषणों से लेकर खाद्य पदार्थ तक, किले से लेकर जंगल तक, वस्त्रों से लेकर शस्त्रों तक सबका सजीव चित्रण हुआ है। उपन्यास में मुख्य कथा के साथ–साथ–प्रासंगिक कथाओं का भी विकास हुआ है। उपन्यास में सजीव, सार्थक, संक्षिप्त, स्वाभाविक, भावानुकूल संवादों का प्रयोग किया गया है।

कथाकार कथा के नैरेटर के माध्यम से लिखे हैं–''उमेदा स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों से युद्ध करते हुए शहीद होनेवाली नर्तकी थी। उसने अपने राज्य के कुँवर के साथ अंग्रेजों से युद्ध लड़ा, उसे न सत्ता का लोभ था, न पद का लालच। वो अपने लिए नहीं लड़ी, वह तो मातृभूमि के लिए शहीद हुई। इसके बाद भी उसे सम्मान नहीं मिला। हाँ, उसको भुलाने के तमाम प्रयास किये गये। कुँवर चैन सिंह को लोग भगवान की तरह पूजते हैं। नरसिंहगढ़ क्षेत्र में शादियों में उनके गीत गाये जाते हैं। उनकी समाधि पर जाकर लोग मन्नत माँगते हैं, पर उमेदा की समाधि पर कोई नहीं आता। मैं तो कहती हूँ, हर शहीद का सम्मान इसी तरह किया जाना चाहिए, लेकिन उमेदा की तरह जो अपेक्षित है, उन्हें एक शहीद का सम्मान मिल जाए, तो काफी है।'' (पृ. 196–197) योद्धा नर्तकी उमेदा की बस एक टूटी–फूटी समाधि है, जो सीहोर में कुँवर सिंह की छतरी के पास बनी हुई है। इस समाधि के बारे में कथाकार ने लिखा है–''समाधि के पत्थर धीरे–धीरे गिर जाएँगे, सब.....सके। हाँ, एक तस्वीर कुँवर चैनसिंह की छतरी में लगी है। जो छुपी हुई है परदे के पीछे, जिसमें युद्ध का दृश्य है। उसमें उमेदा दिखाई देती है। यह चित्र कुछ दिनों तक उमेदा की याद दिलाता रहेगा। तस्वीर देखकर कुछ लोग पूछ लेंगे कि ये कौन?तब अधिकतर लोग हिकारत से कहेंगे 'आई थी एक नाचनेवाली,' जिसकी मौत यहाँ हुई थी।'' (पृ. 197)

इस उपन्यास में आख्यान के माध्यम से राजा– महाराजाओं, सरदारों, सेना नायकों, वफादार सैनिकों के जीवन संघर्ष और मानसिक सोच–विचार को अभिव्यक्त किया गया है। पुस्तक में महारथियों की शौर्यगाथाएँ, राजनीति, षड्यंत्र, दर्द, पीड़ा, यातना का चित्रण है। इस उपन्यास में सजीव, सार्थक, संक्षिप्त, स्वाभाविक और सरल संवादों का प्रयोग किया गया है। यह उपन्यास अपने कथ्य, प्रस्तुति और चिंतन की दृष्टि से भिन्न है। कथाकार ऐतिहासिक तथ्यों की तह तक गये हैं। उपन्यास लिखने के पूर्व उपन्यासकार ने आधुनिक भारत का इतिहास सहित अनेक ऐतिहासिक पुस्तकों का गहन अध्ययन किया है। लेखक ने इस उपन्यास को बहुत गंभीर अध्ययन और शोध के पश्चात् लिखा है। इस पुस्तक में कथाकार ने ऐतिहासिकता को बरकरार रखते हुए महिला सशक्तिकरण पर भी अपनी कलम चलाई है। उपन्यास के सभी पात्र अपने सामाजिक स्तर के अनुकूल भाषा का प्रयोग करते हैं। 'उमेदा–एक योद्धा नर्तकी' उपन्यास शिल्प और औपन्यासिक कला की दृष्टि से सफल रचना है। यदि आप एक बार पुस्तक को पढ़ना आरंभ कर देते हैं तो फिर कहीं से भी छोड़ने का मन नहीं करता। इस ऐतिहासिक उपन्यास में आकाश माथुर ने कुँवर चैन सिंह और योद्धा नर्तकी उमेदा को जीवंत कर दिया है। यह उपन्यास सिर्फ पठनीय ही नहीं है संग्रहणीय भी है। भविष्य में आकाश माथुर से ऐसी और भी पुस्तकों की प्रतीक्षा पाठकों को रहेगी। आशा है साहित्य जगत् में इस ऐतिहासिक उपन्यास का स्वागत होगा।

समीक्षा

ज्ञानरंजन की कहानियों का यथार्थ

डा. संजय सिंह
प्रिंसिपल
पूर्णियाँ महिला कॉलेज, पूर्णियाँ
मो0–9431867283

ज्ञानरंजन नई कहानी की कलात्मक उपस्थापनाओं के बाद सातवें दशक के सबसे सचेत कहानीकार हैं। विचार और शिल्प दोनों ही दृष्टियों से उन्होंने अपनी कहानियों में यथार्थ के लिए संश्लिष्ट रूप को कंटेण्ट के स्तर पर डी–कोड किया है, जिसे समझने में प्रायः देर हो जाती है, लेकिन यह उस दौर का अपना तनाव था, जिसने उसके महत्व को शीघ्र स्वीकारा। उनकी, पिता और घंटा जैसी विलक्षण कहानियों की जितनी प्रशंसा की जाए कम है। मूल्यों का विखंडन कहानीकार नहीं करता है। समय–समाज और तत्कालीन परिस्थितियों के अपने गलत–सही फैसले होते हैं। कहानी में जिस वैज्ञानिक सोच का अन्वेषण उनके यहाँ होता है, वह दुर्लभ है। यहाँ जीवन के प्रति हमारा ध्यान नहीं जाता। पिता सिस्टम का आधार है, लेकिन बदलती हुई परिस्थितियों में भी वे उन्हीं अनुभवों और जीवन मूल्यों के साथ हैं। यही असली संकट है। वे बदली हुई परिस्थितियों के साथ चलने के लिए तैयार नहीं है। एक स्वाभाविक खिंचाव और तनाव है दो पीढ़ियों की सोच में।

वस्तुतः साठोत्तरी कहानियों का परिप्रेक्ष्य नई कहानी से भिन्न है। ज्ञानरंजन बहुत प्रामाणिक अनुभूति के साथ इस दौर में प्रकट हुए। मध्यवर्गीय जीवन की कुरूपताओं, वीभत्सताओं, आत्मछल, और विडम्बनाओं को ही नहीं, बल्कि दो पीढ़ियों के संघर्षों और तनावों, सामाजिक–पारिवारिक संबंधों की संरचनाओं के खिंचाव को उन्होंने रचनात्मक स्तर पर शिद्दत से महसूस किया। पीढ़ियों का संघर्ष एक स्थापित तर्क हो न हो, लेकिन परिस्थितियों के दबाव के बीच जिन चीजों को बदलना चाहिए, वह अगर नहीं बदले तो स्थापित संरचनाओं के विघटन की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता। पिता अगर गाँधी हैं, तो सारे बच्चे गाँधी नहीं हो सकते। उन मार्गों के अनुसरण की अनिवार्यता उनकी अस्मिता का विखंडन करनेवाला होता है। अगर वह सिस्टम का रूप ले, तो और खतरनाक है। उनका औदात्य एक विजड़न है।

कहना नहीं होगा कि साठोत्तरी कहानियों में नई कहानी की हार्दिकता का वातावरण टूट जाता है। 'पिता' कहानी में यह तनाव और संघर्ष उस 'आडियोलॉजी' को लेकर है, जहाँ से समाजिक संबंधों में विघटन पैदा होता है। पुराने विचारों के पूर्वाग्रहों ने आनेवाली पीढ़ी को इतना विचलित किया कि वे आत्महनन और विस्थापन के आखिरी दरवाजे तक पहुँच गए। इन कहानियों में ऊब, कुंठा, घुटन, संत्रास, अकेलापन, अजनबीपन, आयाचित नहीं है। पिता को लेकर जो कहानी में हिकारत और क्षोभ है, वह हमारी अपनी परिस्थिति से उपजी पीड़ा है। नई पीढ़ी की असहायता उस व्यवस्था के ऐतिहासिक स्वरूप और यथास्थिति को लेकर है, जिसे तत्काल तोड़ने की आवश्यकता है, पर जिसे तत्काल तोड़ना कठिन है–

''उसे लगा पिता एक बुलन्द भीमकाय दरवाजे की तरह खड़े हैं, जिनसे टकरा–टकराकर हम सब निहायत पिद्दी और दयनीय होते जा रहे हैं।'' (पृ. 20, प्रतिनिधि कहानियाँ)

जाहिर है इस पराजय ने सोचने में एक ऐसा अवसाद पैदा किया है, जहाँ तबसे अबतक आदमी बेगानेपन की उस नियति को चुनने के लिए विवश है। पिता के नहीं बदलने में सत्ता का हठधर्म है। अपनी संतति को अपनी शर्तों पर पालने का दंभ है। उनके विचारों के सामने दूसरे के विचारों का कोई मूल्य नहीं है। वे कहते हैं–''ये फैशन–वैशन जिनके आगे आप लोग चक्कर लगाया करते हैं, उसके आगे पाँव की धूल है।'' पेज नं. 18 वही। मतलब यही कि उनका अनुभव ही अंतिम अनुभव है। प्रतीकात्मक स्तर पर अपने सारे रागात्मक औदात्य के बावजूद पिता व्यवस्था से ज्यादा एक उपनिवेश हैं।

आकस्मिक नहीं कि पिता कहानी के नैरेटर के जीवन की ऊब और एकरसता, गर्मी और बेचैनी, रात के सन्नाटे में सोचने का व्यतिक्रम, व्यवधान, फालतू होने का अहसास, अकेलापन आदि का अगर सूक्ष्म अंतर्निरीक्षण किया है। सोचा जाए तो यह सब एक गहरी यातना की अनुभूति से हमें भर देता है। अस्वीकृति और इनकार से भी। दरअसल 'पिता' कहानी में पिता की उपस्थिति एक राजनीतिक घटनाक्रम की उपस्थिति भी है, जिसमें तब्दीली चाहिए। इस रूपक में पिता की अवमानना कहीं नहीं है, बल्कि बड़ी संजीदगी से लगाव और मोह के बीच सत्ता हस्तांतरण की आवश्यकता की ओर संकेत है।

अगर रघुवीर सहाय की एक कविता की कुछ पंक्तियों को लेकर कहा जाए, तो लोग उठेंगे और एक रोज/ अपनी ऊब को/ आकार देंगे।

पिता कहानी में अर्थ के इस लाक्षणिक स्पेश को ढूँढ़ा जा सकता है। उसका ट्रीटमेंट वाकई बेचैन करनेवाला है। प्रतिरोध के आत्म–अंश को उन क्रियाओं में देखा जाना चाहिए, जिनमें अस्वीकार की चेतना बेचैनी की धधक बनकर छिपी रहती है। पिता कहानी का रचनात्मक आक्रोश कहानी के शिल्प में कहीं मर्यादा की सीमाओं को नहीं तोड़ना। ज्ञानरंजन पिता के संघर्ष और ऐतिहासिक भूमिका के प्रति कटु नहीं हैं। वे परम्परा और इतिहास को ठुकराते नहीं हैं, बल्कि पुनर्मूल्यांकन का साहस जुटाते हैं, जो भारतीय संदर्भों में काबिलेगौर है।

इस अर्थ में यह एक ऐसी कहानी है,जो पिता के महत्व के साथ बदलाव की अनिवार्यता पर बल देती है। साठोत्तरी कहानियों में यह कलात्मक अनुशासन विरल है। यह कहानी अपने शीर्षक के साथ भरसक न्याय करती है। ज्ञानरंजन के रचनात्मक आक्रोश का विस्फोटक अगर देखना हो, तो उनकी 'घंटा' कहानी को देखना चाहिए। जहाँ अपसंस्कृत, अभिजात्य के प्रतीक कुंदन सरकार के घंटा ढोने का इनकार उनकी क्रांतिधर्मी चेतना के रूप में भविष्य की हिन्दी की कहानियों को पाथेय के रूप में विचारों की एक चिनगी सौंपती है। हिप्पोक्रेट समाज व्यवस्था के खिलाफ नैरेटर तनकर खड़ा हो जाता है। ज्ञानरंजन की कहानी दोगले बुद्धिजीवियों की बारीक शिनाख्त करती है, जो एक जगह कहते हैं–''तुम देखो मैं स्कॉच पी सकता हूँ। फिर भी ठर्रा पीता हूँ, बीड़ी क्यों पीता हूँ, सड़कों पर पैदल क्यों भटकता हूँ, बोरा खादी क्यों पहनता हूँ, गाड़ी होते हुए भी पैदल क्यों चलता हूँ, जबकि मैं लेखक नहीं हूँ–बुद्धिजीवी हूँ। (पृ0 107) और दूसरी जगह कहा है–''अदब से रहो, यह ऊँची जगह है। तुमने देखा, तुम्हारे अलावे यहाँ और कोई हँसा नाड़े पर, सभ्यता की वजह से ही यहाँ बैठे लोग यह महसूस

कर रहे हैं कि उनका ही नाड़ा है, जो लटक गया है। तुमने शायद इसे पेट्रोला समझ रखा है।(पृ. 111, प्रतिनिधि कहानियाँ)

सचमुच आज जब देश का नाड़ा लटक रहा है, यह देश की दोगली बुद्धिजीविता है, जो राजनीति के इस डॉयस पर डबल रोल कर रही है। इस किरदार को पहचानने की जरूरत है। यद्यपि इन खतरों को भुगतने का अनुभव आसान नहीं है। पर इसी सभ्यता ने हमारी समझ को गुमराह कर सत्ता के साम्राज्य को पूँजीवादी भोगविलास का साधन बना रखा है। हमारी नाक से बहता लहू राजमार्ग पर काले धब्बों में तब्दील हो जाए, इससे पहले इनके घंटे को गिराना होगा। इस कहानी पुनर्पाठ इसलिए मौजूदा दौर में भी महत्वपूर्ण है। सवाल उठता है यह अश्लीलता, यह मूल्यभ्रंशता, वैचारिक विचलन और अनीति क्यों?औपनिवेशिक साम्राज्यवादी सत्ता के अभिजात्य में ही तो कहीं वह उपभोगवाद नहीं, जिसे विरासत में उनके उत्तराधिकारियों ने अपना उपजीव्य बनाया, जहाँ आजाद मुल्क उनके लिए उत्पाद में तब्दील हो गया?गौर करने की जरूरत है कि साठोत्तरी कहानियों में यह नाड़ा क्यों लटक रहा है?यह कहानी में उस सभ्य–समाज का नाड़ा है, जो आजादी के समय अपने तमाम आप्त–वाक्यों और सूत्रों से खुद विचलित होकर एक व्यापक राजनीतिक मोहभंग को जन्म देता है, यह बहिर्गमन किसी गतिरुद्ध कस्बे, शहर या गाँव का अतिक्रमण नहीं, बल्कि उन विचारों और मूल्यों से ही बहिर्गमन है, विपथन है, जिसका मर्म ज्ञानरंजन की कहानियों ने नैरेटर के आक्रोश और व्यंग्यमय विचारों में मुखर होता है। साठोत्तरी कहानियों का यही रचनात्मक आक्रोश और भाषिक संरचना में निहित व्यंग्य उसे नई कहानी के विचार और संवेदना की तुलना में ज्यादा महत्तर बनाता है, जिससे उस कल्पित रागात्मकता और सम्मोहित स्वप्न का धरातल टकराकर टूट जाता है।''जब शहर की जानकारी मुझपर खुल गयी, तब पता चला यहाँ का मामला बेहद संगीन है। लगता था होश उड़ जाएगा। यहाँ बला के सुंदर वदन और तिलस्मी चाल–ढाल से भरे स्थान थे। शीशे पर तैल आकृति सी बिछलती आकृतियों जैसी बिछलती रोशनी थी और थी बिगड़ने वाली महक। चित्रकार रंगीन कीचड़ की दुर्घटनाओं में थप–थप कर रहे थे। कूकते कवियों, पोथा लिक्खाड़ों, स्निग्ध अखबारनवीसों और शीर्ष बुद्धिजीवियों का झुंड था। इन सबके पास अपनी–अपनी जगहें थीं। ये सब लोग स्वतंत्र थे और इन्होंने लड़ाई–झगड़े को साफ कर दिया था। कदम–कदम पर ऐसा संगीत प्रसारित होता मिलता कि आश्चर्य होता था, आसपास पौधे कैसे जीवित हैं और खिड़कियों के काँच क्यों नहीं चटक गये हैं।''(वही, पृ0 119)

इन कहानियों में ज्ञानरंजन का गद्य इतना अर्थ–व्यंजक है कि उनकी भाषिक संरचना में आए संवसाद और नैरेटिव्स के बल पर यह कहा जा सकता है कि ये रचनात्मक संयम और अनुशासन के साथ पूर्ववर्ती भाषिक डिसकोर्स को तत्काल केन्द्र से बाहर धकेल देते हैं। उनकी कहानियों की क्रॉफ्टिंग और दृष्टि विन्दु के तनाव को ध्यान से देखा जाए। जाहिर है यह केवल घटनाओं, विचारों, पात्रों और परिस्थितियों की अन्विति नहीं है, बल्कि एक भाषिक संरचना के अंदर स्थापत्य (शाब्दिक संरचना) का निर्माण है। एक सभ्य–समाज का सारा मानसिक क्रिया–व्यापार वस्तुतः भाषा का क्रिया–व्यापार है। सर्जनात्मक अभिरचना में यह प्रयोजन मूलक हो जाता है। वॉन ओ कॉर्नर इसलिए कहते हैं–''व्यंग्य का गुणधर्म युग की प्रकृति पर निर्भर करता है।'' डॉ. सुरेन्द्र चौधरी भी कहते हैं–''तीक्ष्ण अंतर्विरोधों के युग में व्यंग्य एक व्यावहारिक हथियार है, एक अत्यन्त सिद्ध साधन भी।'' (पृ. 108, कहानी प्रक्रिया और पाठ)

अब जरा नैरेट के इस व्यंग्य को देखिये–''मुझे पता नहीं क्यों उम्मीद थी कि मनोहर अपने दिमाग का सदुपयोग करेगा, लेकिन वह सीधा मुनाफे की ओर चला गया।''(पृ. 120 बहिर्गमन, प्रतिनिधि कहानियाँ) कौन है यह मनोहर एक पात्र या चरित्र या हमारे उस सभ्य समाज का आत्म–विच्युत रूपक?एक घटिया प्रतीक, जिसने अपने महत्वाकांक्षी अभियान में स्वार्थ, फरेब, दोगलेपन और अवसरवाद के उस मूल्यभ्रष्ट माहौल में उन प्रतिरूपों में अपना अंतरण किया या उस अंतरण का एक भ्रष्ट प्रीतक बनकर आज भी हमारे समय समाज में उपस्थित है?इसके बारे में नैरेटर के उस वक्तव्य को भी देखें–''टटोलते–टटोलते एक ऐसा समय आया, अब मनोहर ने इन्सानियत सम्पन्न अवाम की नाड़ी पकड़ ही ली।... उसकी सीख यह थी कि मैं आम आदमी हूँ और उसे खोजने के लिए भटक रहा हूँ।''(पृ. 119, बहिर्गमन, प्रतिनिधि कहानियाँ)

जरा पहचानिये कौन है यह आदमी?उदय प्रकाश की कहानी दिल्ली की दीवार से तुलना करते हुए अगर इसे पकड़ जाए, तो अपने समय–समाज, देश–काल और आत्मकथ्य से बहिर्गमन करता हुआ यह हमारे समय का सर्वव्यापी, सर्वसमावेशी, बर्बर, वर्चस्वशाली, बाजारवादी, उपनिवेशवादी दर्शन के प्रतिरूपों से मेल बनाता हुआ सबसे भ्रष्ट नृशंस, क्रूर और अमानवीय चेहरा है, जो आज की लक्ष्यहीन राजनीति का नगीना है। यह कुत्तों और सूअरों के देश को एक दिन अपने स्वार्थ के लिए किसी स्विश बैंक में बंधक रखेगा। अपनी आत्मा को गिरवी रखकर यह उन पुर्जों के साथ भटकेगा, जहाँ संबंधों का कोई मोल नहीं होगा। उस पशु–सभ्यता को महान कहेगा। सोचकर जुगुप्सा होती है, जिसके लिए बीवी–बच्चों का कोई मोह नहीं होगा, उसके लिए देश का कितना मोह होगा। अपनी साँठ–गाँठ से भारतीय अर्थव्यवस्था को अपने विचारों के रूपक में ढालकर हर पात्र और चरित्र को अपने इस्तेमाल के लायक वस्तु बनाकर वह हमें कहाँ ले जा रहा?ज्ञानरंजन की बहिर्गमन कहानी का मर्म काल का अतिक्रमण करता है। यह संबंधों से, मूल्यों से और विचारों से, बहिर्गमन है। यह उस बौद्धिक विरासत की आत्मविच्युति है, जिसे औपनिवेशिक जीवन–मूल्यों ने विकृत किया है। ज्ञानरंजन की यह कहानी अपने रचनात्मक 'आक्रोश' को व्यंग्य की पूरी ताकत के साथ पाठकीय अवधान में रखते हुए पुनर्रचना की माँग करती है। यह किसी रचना की कालजीता है, जो हमें अपने इतिहास, स्मृति और मिथ में ले जाकर आगाह कराती है कि उस आसरे से वर्तमान में हमारे साथ धोखा हुआ है। चाहे वह सोमदत्त, मनोहर, कुंदन सरकार माल्या, मैहसूल की नीरव मोदी हो। इनके बारे में 'बहिर्गमन का नैरेटर' कहता है–''मैं यह कहने की तीव्र इच्छा रखता था कि लोगो सावधान! आस्तीन को झटको।'' (वही, पृ. वही, बहिर्गमन, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल प्रकाशन)

दिल्ली की दीवार से ओट लगाए सत्ता के गर्भगृह में बैठे ये वही लोग है, जिन्हें मुक्तिबोध के नैरेटर ने भी अँधेरे में कभी गठजोड़ करते देखा था। ये भारतीय राजनीति के ऐसे दलाल मोहरे हैं, जो कभी इधर तो कभी उधर करते हुए पैसे के लिए जीवन मूल्यों की हेराफेरी करने में भी माहिर हैं। ये देश क्या मनुष्य होने की सारी शर्तों को बेच सकते हैं।

समीक्षा

औरत की जानिब एक औरत का सफर

डॉ. अरुण कुमार वर्मा
जवाहर नवोदय विद्यालय पदमी
मंडला (म.प्र.)
मो.–9754128757

औरत की जानिब' डॉ. धीरेन्द्र कुमार पटेल का काव्य संग्रह है। यह लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद से इसी वर्ष (2021) प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत संकलन आधी आबादी के अस्तित्व के सवालों को लेकर समाज के समक्ष सार्थक बहस का मंच प्रदान करता है। सामाजिक संरचना में औरत की अस्मिता में आई गिरावट के कारणों की पड़ताल करते हुए उसकी सच्चाई को वेबाकी से रखा गया है। हमारा समाज उसके महिमामंडन के कसीदे जरूर पढ़ता है, लेकिन सच्चाई इसके उलटे है। 'पितृसत्ता' के प्रभाव में पैदा हुई औरत को 'बनाई गई औरत' तक के मुकाम तक लाकर खड़ा किया है। 'स्त्री–विमर्श' ने औरतों की आवाज को मुखर किया है, इस बात को नकारा नहीं जा सकता, फिर भी औरतों का एक बड़ा हिस्सा आज भी हासिए पर है। 'औरत की जानिब' संकलन वर्तमान में हासिए पर रही औरतों की आवाज बनकर हमारे समक्ष है। इसमें बालिका से लेकर माँ, पत्नी, प्रेमिका के उत्थान–पतन का मनोवैज्ञानिक चित्रण है। कवि औरत के व्यक्तित्व विकास को सर्वोपर्य मानते हुए स्वानुभूति, सहानुभूति तथा समानुभूति के नारों से ऊपर उठकर सहअस्तित्व के स्वर को नया आयाम दिया है।

'औरत की जानिब' संकलन में कुल 66 कविताएँ संकलित हैं। सभी कविताएँ स्त्री मनोभावों की विविध स्थिति–परिस्थिति का सफल चित्रण है, जो पाठक के मानस पर अपनी गहरी छाप छोड़ जाती हैं। 'स्त्री–विमर्श' पर इतनी कविताओं को समाहित किये हुए शायद यह अकेला काव्य संकलन होगा। एक–एक कविताओं को वैचारिक सघनता की दृष्टि से देखा जाए तो इसे स्त्री जीवन का महाकाव्य कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। संकलन में कवि कहीं भी किसी मान्यता से टकराता नजर नहीं आता है, बल्कि सहजता से समाज में घटित औरत जीवन की विसंगतियों का शब्दचित्र गढ़ता है, जिसका एक–एक बिम्ब मानस पर अवतरित होकर हृदय की गहराइयों में उतर जाता है और कविता सोचने–विचारने का 'स्पेश' निर्मित करती है। 'नजरिया' कविता को देखिए किस तरह से औरतें, पुरुष द्वारा बनाए गये ढाँचे से बाहर आ रही हैं–

''वे न पत्थर होती हैं
न सिर्फ रूप–रंग
उन्हें देखने के लिए
जमाने को ढूंढना पड़ता है नया ढंग
और बदलना पड़ता है नजरिया
आखिर वे
बने–बनाए साँचे से बाहर निकलकर
औरत की जानिब
बदल रही हैं दुनिया।''

कवि, कविता और घिसे–पिटे उपमानों मोहजाल से मुक्त करना चाहता है। संकलन में नये–नये प्रतीकों का चयन कर नये–नये बिम्ब गढ़े गये हैं, जो कि हमारे आसपास के परिवेश से ही लिये गये हैं, जिसे हम अक्सर देखा करते हैं, लेकिन ऐसा भी हो सकता है, यह तब समझ पाते हैं, जब कविता को पढ़ते हैं। इसकी पुष्टि 'खिड़कियाँ' कविता से कर सकते हैं। खिड़कियाँ कब लड़कियों में बदल जाती हैं, पाठक इसका अंतर नहीं कर पाता। इस तरह के अनेक उदाहरण संकलन में भरे पड़े–

''खिड़कियाँ
बचाती हैं मकानों को
कैदखाना होने से
सोलहवीं शताब्दी की जनाना होने से
बंद होती हैं तो
जैसे मकानों पर पैबंद होती हैं
खुलती हैं
जब मकानों की खिड़कियाँ
तो लगता है
जैसे खिली हों लड़कियाँ।''

'सुनी मैंने वह नहीं थी जो सुनी झंकार' निरालाजी की यह परिपाटी जिसमें चित्र बोलते हैं। विवेच्य काव्य संकलन में भी इसी तरह के बोलते चित्र उभरे हैं। औरत के साथ सदियों से समाज ने जिस धारणा को निर्मित किया है, वह घर और समाज सब जगह उस असमानता से जूझती रहती है। कवि आंदोलन नहीं खड़ा करना चाहता है, बल्कि जहाँ लोगों का ध्यान नहीं गया है, वहाँ का बारीकी से विश्लेषण करते हुए चित्र खींचे हैं। 'व्यवहार' कविता घर में पति की खुद की रखी वस्तु के लिए पत्नी जिम्मेदार मानी जाती और वही उसे खोजकर देती है। इस स्थिति में हम सभी सम्मिलित हैं। बात छोटी है, लेकिन बड़ा दर्शन इसमें समाहित है। 'बोनसाई' वर्तमान में साहित्य के लिए बहुत सटीक उपमान है, जो कई समस्याओं की यथार्थता को दर्शाता है। कविता इसके माध्यम से औरत के प्यार की कुर्बानी को दर्शाया है–''वे अच्छी औरत बनने की जद्दोजहद में/काटती है/ अपने प्यार की जड़ों को/ उसे यथेच्छा बढ़ने नहीं देती हैं/ और धीरे–धीरे एक दिन/ वे स्वयं बन जाती हैं/ अपने घररूपी गमले में/ एक खूबसूरत बोनसाई।'' स्त्री–विमर्श के दायरे से घरेलू कार्यों में रत औरत नदारत है। विवेच्य संकलन उनके प्रति सचेत रहते हुए उनके सुख–दुःख की बात करता है। 'उलझन' कविता में घर के कामों में वह इतना लिप्त हो जाता है कि वह स्वयं 'सिर्फ घर हो जाती है।' 'घरेलू औरत' में उसकी दिनचर्या का चित्रण देखिए–

''झाड़ती बुहारती है
घर संवारती है
भूल जाती है
दिन और रात का फर्क
बस वे रोज
घरेलू काम निपटाती हैं
सुख–दुःख बाँटती है
बिना किसी तर्क के
जिन्दगी काटती है।''

'घर और औरत' कविता भी कामकाजी महिला के कामों के उलझे रूप, उसके जीवन की निस्सारता को अभिव्यक्त करती है। उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रभाव से वस्तुओं में उलझ जाता है घर और उसी में उलझ जाती हैं घर की औरतें। 'बिजूका' कविता में किसान और उसकी पत्नी की संवेदना उभरी है–'आखिर बिजूका/उसके पति का प्रतिरूप होता है'। 'माँ का गुण' कविता में माँ को बया पक्षी के उपमान से सृजित किया गया है, जो हर संकट से अपने बच्चे को बचाती है। 'परिवार' कविता में औरत की व्यवस्ता को घर में बने कई घरों में व्यस्त कर दिया है। 'कर्मशील औरतें' कविता में उनके कर्म कोई मिथ नहीं, बल्कि जीवन की सच्चाई है, जो उनके संघर्षों से ही बनाया जाता है

सुन्दर परिवेश। 'सभ्यता' कविता में कवि गीजा के पिरामिड, एफिल टावर, स्टैचू आफ लिबर्टी तथा बड़े–बड़े महानगरों को सभ्यता का मानक मानने से आपत्ति जताई है। वह कहता है कि आखिर कब मापा जाएगा/ मानव को उस दो गज की कोठरी से/ जिसमें औरत लाचार होती है।'' इस तरह से बहुत सारे चित्र समाज से सवाल करते इस संकलन में दिख जायेंगे।

औरत के संदर्भ में सौंदर्यबोध का पैमाना भी पुरुषवादी है, परन्तु स्त्री भी स्वयं को पुरुष के नजरिये से देखने को अभ्यस्त होने से अपने ही वर्ग के साथ भेद–भाव करती है। अपने को सम्भ्रांत घोषित करने की लालसा से रंगभेद को जन्म दिया है और ईश्वर का अधिक करीबी बतानेवाले वर्ग ने ही ईश्वर की संरचना पर प्रश्न चिह्न लगाया। रंगभेद पर कवि का दृष्टिकोण औरत के घेरे से निकलकर व्यापक हो उठता है। सामाजिक संरचना आज भी रंगभेद के जाल से मुक्त नहीं हो पाई है। समाज रंगभेद का दंश झेल रहा है। इसकी परिणति 'टोनी मारिसन की याद में' कविता में द्रष्टव्य होती है। यह कविता रंगभेद पर सामाजिक धारणा को स्पष्ट करती है–''प्रभुत्वशाली गोरी कौमें/ कोई न कोई छल करती हैं/ जब कालों के समुदाय से किसी खास काले को/ अपने किसी हित में/ राष्ट्रपति/ विश्व सुंदरी/ ब्रह्मांड सुंदरी/ अथवा किसी विशिष्ठ पद पर चुनती हैं।'' 'वह लड़की' कविता में एक साँवली लड़की के मनोविज्ञान को बहुत बारीकी से उकेरा गया है–

''वह लड़की
न तो आत्ममुग्ध लगती है
न तो वह बावली है
हाँ जरूर वह
आसपास की अन्य लड़कियों से
बस थोड़ी सी साँवली है।''

सौंदर्यबोध के प्रति हमारा नजरिया प्रेम में जहाँ साहचर्य पर केन्द्रित होना था, वह काम्या पर जाकर टिक गया। वर्तमान समाज भी इससे ऊपर नहीं उठ पाया। हर क्षेत्र में रूप की माँग बढ़ी है। 'औरत का चित्र' कविता पुरुष की इसी वृत्ति का उदाहरण है। वह औरत का सुंदर चित्र बनाता है, परन्तु उसकी छाती में आग नहीं भर पाता। उसके शरीर पर उसकी उंगलियों के गुदगुदाते निशान परिलक्षित होते हैं। 'कला का वसूल' कविता में खजुराहो और कोणार्क के बहाने कवि काम्या जीवन दृष्टि को चित्रित किया है। 'ताजमहल देखकर' कविता में कवि ने अब तक के सारे मानकों को बदलते हुए पुरुषवादी चेहरे को बेनकाब किया है। वह लिखता है यदि मुमताज न मरी होती तो ताजमहल न बना होता और यह चौदहवीं बच्ची गौहर आरा की माँ होती एवं हो सकता है और बच्चे जनती। कविता के अंत में वे लिखे हैं–''सच तो यह है कि/ ताजमहल/ बादशाह के मन का मलाल है/ आखिर एक और की जानिब/ मुमताज की मौत/आज भी सबसे बड़ा सवाल है।'' संकलन में सिमोन के कथन को वर्तमान संदर्भ में लाया गया है। औरत पैदा नहीं होती, बनाई जाती है और बनाई गई हर चीज का एक निर्धारित कर्म होता है। यहीं से शुरू होती है स्त्री के कामों की रूपरेखा और प्रकृति के विपरीत उसके जीवन की संरचना। 'औरत पैदा नहीं होती' कविता का उदाहरण देखिए–

''पुत्र पैदा करना
औरत के लिए निर्धारित कर्म है
इसलिए धर्म, दर्शन, इतिहास और साहित्य में
जहाँ कहीं भी औरत के बनाए जाने का षड़यंत्र है
औरत की जानिब
सिमाने–द बुवा की वहीं–वहीं नजर है।''

'कोख' तथा 'बीज' कविता भी औरत की बच्चे जनने की प्रकृति एवं उसके स्वतंत्र अधिकार पर आधारित है। सृष्टि के लिए दुनिया का कोई भी कार्य इससे महान नहीं हो सकता, लेकिन औरत को इसके बदले मिलता क्या है?'एनीफ्रैंक' ने अपनी डायरी में लिखा है कि जितना कष्ट सीमा पर लड़ते हुए एक सिपाही उठाता है, उससे कहीं ज्यादा कष्ट बच्चे को जन्म देते समय स्त्री उठाती है, परन्तु इस कर्म का उसे वह मूल्य नहीं मिलता, जिसकी वह हकदार है। 'संकलन' की पुनर्जन्म कविता में औरत का यथार्थ रूप देखिए–

''आदमी के घर में रहकर
औरत आदमी से जरा भी कम है
भले ही औरत की जानिब
माँ बनना औरत का पुनर्जन्म है।''

समाज में औरत का जो स्वरूप दृष्टिगत है, उसमें ज्यादा हिस्सा बनाई गई औरत का है। आज भले ही हम स्त्रियों के विकास का ढिंढोरा पीट लें, कामकाजी महिलाओं का जीवन परंपराओं और रूढियों से जकड़ा है। आज भी वे वह जीवन जी रही हैं, जो वैज्ञानिकता से कोसों दूर है। उनकी आवाज उठाने का काम कवि ने बहुत ही सहजता से किया है। 'सभ्यता' कविता में सभ्यता के दावों को एक पंक्ति में खारिज कर दिया गया है 'कब मापा जाएगा मानव सभ्यता को उस दो गज की कोठरी से', 'सियासत' कविता की एक पंक्ति 'नहीं चाहिए उन्हें अब कोई ऐसी विरासत, जिसमें हो रामायण और महाभारत जैसी कोई सियासत' सारे गढ़ को बिना किसी हलचल के ध्वस्त कर देती है। 'रहस्य' कविता प्यार की अमरता को दर्शाती है, लेकिन औरत सदा ही इससे वंचित रहती है। 'चुनौती' कविता में इस स्थिति को देखा जा सकता है–

''जब भी प्यार से जीने की बारी आयी
जज्बात से बराबर होने की बात आई
तब परंपरा, रीति–रिवाज
धर्म–जाति, रंग–रूप की
कोई न कोई दीवार खड़ी हो गई
जो औरत के पूरे वजूद से
बड़ी हो गई।''

'उलझन' कविता की एक पंक्ति 'सिर्फ घर हो जाती है' औरत के जीवन के सारे रहस्य खोल देती है। इन सबके बावजूद वे अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रही हैं। इसमें प्रेम करती लड़कियाँ हैं तथा प्रेम कविताएँ लिखती लड़कियाँ हैं। 'हद' कविता में 'लड़कियाँ खुद गढ़ रही हैं अपना कद, अब बहुत मुश्किल है उनके लिए बनाना कोई हद।' अब वे समाज के ताने–बाने को समझ रही हैं तभी तो सियासत कविता में कवि ने लिखा है– ''आखिर औरतों ने जान लिया है कि/ कपड़ों से लाज नहीं ढकी जा सकती है/ ढकी जासकी है/ सिर्फ आजादी।'' 'मिल्कियत' कविता में उसके सौंदर्य प्रेम को लेकर व्यंग्य किया गया है–

''कुछ भी नहीं रह जाता उसका
सब कुछ जैसे हो जाता है आभूषण का
इसलिए बदल जाती है
आभूषण से सजी हुई औरत की हैसियत
लगती है जैसे वह किसी की मिल्कियत।''

'औरत की जानिब' कविता संग्रह कलापक्ष की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। कवि धीरेन्द्र पटेलजी सपाट बयानी से बचते हुए तर्कों के आधार पर खरी बात कहने के हिमायती हैं, जिससे इनकी कविताएँ अति पठनीय हैं। नवीन बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से कठिन, पर सही प्रश्नों के माध्यम से यथार्थ को सहजता से कह देते हैं। पूरे संकलन में कहीं भी महिमामंडन के शब्द नहीं हैं। कविता में एक–एक शब्द उपयोगी हैं। एक शब्द या वाक्यांश, कविता की पूरी दिशा तय करते हैं और पाठक को बहुत कुछ सोचने का आकाश देते हैं। 'गाँव की अच्छी लड़की' कविता में ''वह सुनती है बड़े चाव से/ गाँव की भागी हुई

लड़कियों की कहानी।'' जो उसके स्वतंत्र व्यक्ति की गवाही देती है। संग्रह की कविताएँ विशाल फलक निर्मित करती हैं, जिसमें पाठक एक–एक शब्दों का तर्कजाल बुनने लगता है। सहजता से इतनी गंभीर बात रखने की क्षमता इन्हें भाषा का जादूगर सिद्ध करती है।

निष्कर्षतः 'औरत की जानिब' कविता संकलन औरत की स्थिति–परिस्थिति को समझने की मुकम्मल किताब साबित होगी। इसमें स्त्री जीवन की विसंगतियों की पृष्ठभूमि में जाकर एक–एक परतों को कुरेदने का कार्य किया गया है। कवि उन मूल प्रश्नों को संकलन की कविता में लाया है, जो बनाई गई औरत के रास्ते में आए हैं। स्त्री–विमर्श से होते हुए संकलन अन्य विमर्शों के साथ भी उसी पकड़ के साथ खड़ा है। यह संकलन पाठकों, शोधार्थियों के लिए तो महत्वपूर्ण है ही, कवियों के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसकी कविता आवाम से जोड़ने के लिए नये दृष्टिकोण देती है। समीक्षा की दृष्टि से पुस्तक पर कार्य करना दुष्कर है, क्योंकि इसकी प्रत्येक कविताएँ एक नया विचार या यूँ कहें नये सवाल के साथ आती है और किसी को छोड़ना पुस्तक के साथ अन्याय करना है। यह दुस्साहस मैंने किया है, परन्तु इस आशा के साथ कि मैं जो कुछ भी कह रहा हूँ, वह सहज इशारा मात्र है, सही रसास्वादन के लिए आपको पुस्तक में जाना होगा। यह पुस्तक हिन्दी साहित्य की चुनिन्दा पुस्तकों के मध्य अपना स्थान सुनिश्चित करेगी। ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

गीतें

अपाहिज हो गया चिंतन

राजेश जैन 'राही',
तेलघानी नाका, रायपुर (म.प्र.)
मो0–9425286241

अपाहिज जो गया चिंतन, लगा पहरा सुझावों पर
सभी उलझे प्रभावों में, कहा किसने अभावों पर
हुई जयकार राजा की, सिपाही गौण दिखता है,
जिसे सबने छला वो शख़्स मुझको मौन दिखता है
कथाएँ राम की हैं ज्ञात पर चलना नहीं भाता
भरत भाते सभी को हैं मगर झुकना नहीं आता
लगा डुबकी यहाँ सब पाप धोने की फिकर में हैं
करे अब कौन मंथन मन के अपने मैले भावों पर,
अपाहिज जो गया चिंतन, लगा पहरा सुझावों पर
सभी उलझे प्रभावों में, कहा किसने अभावों पर

चढ़ी है पाप पर रंगत, अभी है वक्त ठहरा सा,
अभी लगता है मुझको न्यास भी मासूम बहरा सा
नदी की तेज धारा पर सभी हैं चाहते बहना
किनारे की व्यथा पर अब किसी को कुछ नहीं कहना
अभी डीजे की धुन पर नाचती दुनिया से मत पूछो
करेगा शोध कोई क्यूँ कहो बदलते स्वभावों पर
अपाहिज हो गया चिंतन, लगा पहरा सुझावों पर
सभी उलझे प्रभावों में, कहा किसने अभावों पर।

2
हुआ घोषित वो नालायक, सभी ने साथ छोड़ा है
बहुत ईमान की दौलत, मगर कंचन ही थोड़ा है

अभी है छाँव का मौसम अभी शीतल हवाएँ हैं
लगी है धूप कब किसको समझती बस दिशाएँ हैं
नये इस दौर ने देखे महल, कुटिया नहीं देखी
बड़ी तनख्वाह है लेकिन अभी दुनिया नहीं देखी
चला था जोड़ने सबको, उसी को सबने तोड़ा है
हुआ घोषित वो नालायक, सभी ने साथ छोड़ा है

करोड़ों में बना है घर, मगर मुखिया है धेले का
मिला चिमटा न हामिद को, नहीं मतलब मेले का
सफलता बेटियों की खास है मन को बहुत भाए
बहुत बेटे भी हैं अच्छे, न बहकर बाढ़ में आए
कहीं है गुमशुदा जिसने कभी राहों को मोड़ा है
हुआ घोषित वो नालायक, सभी ने साथ छोड़ा है

रिझाने की कला जिसमें वही सम्मान पाता है
बड़ा लेखक मगर वह मंच पर शायद ही आता है
फकीरों को महल राजा का बिल्कुल ही नहीं भाता,
किसी लालच में राजा ही फकीरों के यहाँ आता
अभी है ताक पर ईमाँ, अभी हाथों में कोड़ा है
हुआ घोषित वो नालायक, सभी ने साथ छोड़ा है
बहुत ईमान की दौलत, मगर कंचन ही थोड़ा है।

सच्चिदानंद किरण,
भागलपुर, बिहार

कविता

एक नई चेतना

भाग्य को दोष दूँ या
अपने पूर्व कर्म को
पर, जिंदगी तो
जीना ही है साँसों के
अंतिम गिनती तक
उम्र बीतने के इंतजार में
अपने सकर्म–धर्म
निभाना ही पड़ता है
चाहे जिस भी रूप में हो

तन मन को शांति
मिले या ना मिले
पर, जिंदगी तो
दिव्यता में एक नई चेतना
के साथ जीने का
अभ्यस्त होना ही
कोई हिम्मत से
उँची उड़ान में अमन चैन
की जिंदगी जिम्मेदारी
संभाल जीने में व्यस्त

हो जी रहा आशावादी
बन, कोई निर्धनता से,
कोई बेबस हो
मानसिक ग्रस्त हो
जी रहा बेसुध हो
और खोज रहा
अपने आपकी पहचान
कूड़े कर्कट के
ढेर में, ना खाने की
परवाह, पागल दिवाना

बन, बेराहों पर चल–चल
जीवन जीता जा रहा
श्मशान की जलती
धधकती चिता के धुआँ संग
अंतिम पड़ाव में
चिरनिंद्रा के मृत्यु–मोक्ष
में समाहित होकर ज्योतिर्मय में।

आलेख

भारतीय पत्रकारिता का अतीत और वर्तमान

डॉ. अमर सिंह बधान
प्रोफेसर एमरिट्स, डी.लिट्., चंडीगढ़
मो. 9876301085

आजादी संघर्ष के प्रस्थान–बिन्दु से लेकर अधुनातन स्थिति तक के विभिन्न पड़ावों पर यदि गंभीरता से दृष्टिपात किया जाए तो हमारे सामने तीन अहम् सवाल खड़े होते हैं। पहला, आजादी प्राप्ति के लिए हमने क्या किया?दूसरा आजादी मिलने के बाद हमने क्या किया?और तीसरा, आजादी भोगते हुए आज हम क्या कर रहे हैं?यूँ तो तुलसीदास ने 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं' कहकर स्वाधीनता और पराधीनता में बड़े सुंदर ढंग से अंतर स्पष्ट कर दिया है। यह सच भी है कि स्वाधीनता में ही वास्तविक सुख प्राप्त हो सकता है। कोई भी व्यक्ति अपने मन से किसी का पराधीन नहीं बनना चाहता। यहाँ तक कि पशु–पक्षी भी आजाद जिंदगी व्यतीत करना चाहते हैं।

इतिहास साक्षी है कि पुराने समय में भारत पूर्णतया आजाद था और सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक क्षेत्रों में भारतवासी बहुत आगे बढ़े थे; किन्तु समय के साथ यहाँ के लोगों में कुछ कमजोरी आने लगी और यह देश विदेशी आक्रमणकारियों का आकर्षण केन्द्र बन गया। नतीजतन 1206 से 1707 तक भारत में मुगलों का शासन रहा। इसके बाद नादिरशाह और अहमदशाह के आक्रमणों की आँधी आई, जिसने देश को बुरी तरह से तहस– नहस किया। फिर धीरे–धीरे अंग्रेज व्यापारी अपनी चतुराई और छलबल से भारत के शासक बन गये। अंग्रेजों के हस्तक्षेप एवं पाशविक व्यवहार से असंतुष्ट भारतीय अपनी आजादी के लिए बेचैन हो गये। लोगों में एकता आने लगी और राष्ट्रीयता का भाव बढ़ने लगा। सामाजिक चेतना ने भी जोर मारा। साहित्यकारों और पत्रकारों ने स्वाधीनता और देश–प्रेम के बारे में खूब लिखा। आखिर देशभक्तों, क्रान्तिकारियों, नेताओं और युवाओं ने देश को विदेशी दासता से मुक्त कराने की ठान ली। अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध आंदोलन चले नेताओं और देशभक्तों ने जेलों में नारकीय जीवन भोगा और कुर्बानियाँ दीं। फरवरी, 1946 में बम्बई के हजारों नाविकों ने अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया और उनके यूनियन जैक को हटाकर उसके स्थान पर भारतीय झंडे को फहरा दिया। जुलाई, 1947 में अंग्रेजी सरकार ने घुटने टेकते हुए स्वाधीनता नियम पास किया और 15 अगस्त, 1947 को भारत आजाद हो गया। पर देश के दो टुकड़े हो गये–भारत और पाकिस्तान। यह संकेत दर्शाता है कि आजादी प्राप्ति के लिए हमने क्या किया।

अब बात आती है कि आजादी मिलने के बाद हमने क्या किया। सबसे पहले हमने आजादी की लड़ाई लड़नेवालों के सिद्धांतों, लक्ष्यों और चरित्र को भुला दिया और राष्ट्रीय चरित्र को ईर्ष्या भाव से रंग डाला। पंचायत, नगरपालिका, विधानसभा, संसद आदि स्तर पर जो राजनीति चली, उसने भ्रष्ट नेता ही पैदा किये। इन नेताओं में देशप्रेम और राष्ट्रीय भावना इसलिए नहीं है कि इन्होंने पराधीनता की पीड़ा को सहा नहीं है। ईमानदारी इसलिए टिक नहीं सकता, क्योंकि टिकने के लिए बेईमान होना जरूरी है। कुकुरमुत्ता की तरह राजनीतिक दलों एवं झंडों के बढ़ने से लोकतांत्रिक मूल्यों, नैतिकता और राष्ट्रीयता का ग्राफ गिरा है तो सामाजिक और राजनीतिक चिंतन में भी कमी आई है। विदेशी साजिशकर्ता देश में कब और कैसे पैर फैला गये, हमारे बड़े–बड़े राजनीतिज्ञ समझ ही नहीं पाए। साजिशकर्ता का मुँहतोड़ जवाब देने की बजाय हमारे लोकतंत्र के नेताओं ने बहादुर कौमों को ही बदनाम किया। जातिवाद और क्षेत्रवाद के बीच ऐसी गहरी लकीरें खींची कि इनसे नकारात्मक तथ्य ही ज्यादा उभरे। जहाँ युवाशक्ति का सदुपयोग नहीं हो पा रहा है, वहीं भावी पीढ़ी को परिभाषित करना भी मुश्किल हो गया है। शिक्षानीति ने बच्चों को किताब बनाकर आलमारी में रख दिया है। संवेदनशीलता, रचनात्मकता और बौद्धिकता आयातित प्रभावों से बदरंग है। दलबदलू प्रवृत्ति ने लोकतंत्र के वर्तमान को वीभत्स बनाकर रख दिया है। जनता की आकांक्षाओं और सत्ता के कार्यों में बहुत बड़ा अंतर है।

इतना ही नहीं, प्रशासनिक मशीनरी को आम जनता की तुलना में विशिष्ट बनाकर शासक एवं शासित का अस्वस्थ रिश्ता कायम कर दिया, जो नहीं होना चाहिए था। यही हमारे लोकतंत्र की सबसे बड़ी हार है। जो भी नीतियाँ जारी हुईं, उनमें जनता की आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा गया। नतीजे के तौर पर अंतिम पंक्ति में खड़ा अंतिम आदमी आज भी वहीं का वहीं है। कारण यह है कि राजनीतिक दलों की विश्वसनीयता, इनके घोषणा–पत्रों, कार्यक्रमों तथा वास्तविक व्यवहार में बड़ा अंतर रहा। अपने विरोधी दल की कमजोरी से अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए पत्रकारिता तक को माध्यम बना डाला। राजनीतिक पत्रकारिता से जुड़े पत्रकारों ने राजनीति में आकर पत्रकारिता के साथ अन्याय ही किया। राजनीति स्तंभकार के रूप में पाठक उनका परिचय तक भूल जायेंगे। प्रश्न खड़े हैं कि क्या इस लोकतंत्र में हमने मक्कारी और षड्यंत्रों पर विजय प्राप्त कर ली?क्या सारे आपसी भेदभावों, बाह्य और आंतरिक विरोधों को भुला दिया गया है?क्या देश के कोनों से प्रायः सुनी जानेवाली दहाड़ें शांत हो गयी हैं?क्या आज स्थिरता और शांति की आवश्यकता नहीं है?ये सारे पैने–नुकीले सवाल हमारी लोकतंत्र व्यवस्था पर बार–बार दस्तक देते हैं। पूरा चिलमन उतार फेंकने की ललक, तड़प छटपटाहट होते हुए भी विवशताएँ अकड़कर सामने खड़ी रहती हैं।

अपराधी ताकतों और धन के बल पर घुसपैठ ने हमारे लोकतंत्र को बहुत मटमैला कर दिया है। जब पत्रकार इस गंदले राजनीतिक चरित्र का असली चेहरा जनता के सामने रखता है, तो ऐसी स्वार्थी ताकतें पत्रकारों को कुचलने के लिए मचल उठती हैं। एक दौर वह भी गुजरा है, जब अलगाववादी, शिवसेना, उल्फा जैसे संगठन अपना विरोध बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। तो फिर पत्रकारिता के क्षेत्र के अंदर से ही आज की पत्रकारिता और प्रखर रचनात्मक विश्लेषण निकलकर सामने आने चाहिए, क्योंकि एक जीवंत पत्रकारिता के परिदृश्य के लिए ऐसा होना जरूरी बनता है और सही जमीन और सदृश पाठक तैयार करने में अच्छी पत्रकारिता का कोई विकल्प भी तो नहीं है।

लेकिन इधर की पत्रकारिता अपनी दोहरी–तिहरी चुनौतियों, विवशताओं और सीमाओं की गिरफ्त में आने से न तो पूर्व स्थापित आदर्शों व मानदंडों को आत्मसात कर पा रही है और न ही पूरी तरह अपनी अपेक्षित जमीन के साथ जुड़ने को तैयार है। नतीजे के तौर पर मिशन और व्यवसाय के बीच यह बुरी तरह से फँसकर रह गई है। इसमें दो राय नहीं कि आज पत्रकारिता मिशन न रहकर पेशे में बदल चुकी है और इसपर बड़े घरानों का नियंत्रण है। पत्रकारिता के मूल्यों और मानदंडों से उन्हें कोई मतलब नहीं है। प्रश्न है कि हम पत्रकारिता को व्यवसाय बनाकर कौन से पावन राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा कर रहे हैं और किस किस्म की वैयक्तिक और सामाजिक चेतना को जागृत कर रहे हैं?आजादी के बाद की पत्रकारिता से लोगों को बहुत उम्मीदें थीं, पर हर स्तर पर उन्हें निराशा ही हुई है।

आजादी के पहले की पत्रकारिता एक मिशन थी और गोरी सरकार की अन्यान्य बुराइयों व ज्यादतियों का पर्दाफाश करने का सशक्त औजार थी। पत्रकारिता ने देशवासियों को वस्तुस्थिति की सही और साफ पहचान करायी

तथा बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में बाँधकर दुर्दमनीय संघर्ष के लिए तैयार किया। उनके लिए मिशन, पवित्रता और विशुद्ध लक्ष्य का प्रतीक था। इसी वजह ये 'चाँद', 'क्रांति', 'नर्मदा', 'प्रताप', 'भारत' 'मित्र', 'सार सुधानिधि', 'मारवाड़ी बंधु', 'अग्रवाल', 'भारत', 'वैश्योपकारक', 'सरस्वती' आदि पत्र–पत्रिकाओं में पत्रकार अपने बारूदी लेख एवं संपादकीय लिखते थे। आज देश में साम्प्रदायिक तथा अलगाववादी ताकतों का फन कुचलने के लिए गणेशशंकर विद्यार्थी, बनारसी चतुर्वेदी, दुर्गाप्रसाद मिश्र, गोविन्द नारायण मिश्र, माधव मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, कन्हैयालाल वैद्य, झाबरमल्ल शर्मा जैसे निर्भीक, ईमानदार एवं सत्यनिष्ठ पत्रकारों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ जाती है। ये सभी पत्रकार माहौल के प्रति सजग थे और स्वस्थ आलोचना करते थे। उन्होंने किसी भी कीमत पर समझौता नहीं किया। सच तो यह है कि पत्रकारिता ही उनका मजहब था, दीन था और ईमान था। पत्रकारिता के लक्ष्यों, आदर्शों और मानदंडों को उन्होंने कभी भी कुम्हलाने नहीं दिया। वे प्रेरणा की ताकत से ओतप्रोत थे, तो राष्ट्रविरोधी शक्तियों ओर सामाजिक विसंगतियों की ओर उँगली उठाने का माद्दा भी रखते थे। वे जो कुछ लिखते थे, प्रमाण को आधार बनाकर लिखते थे। भगत सिंह द्वारा लिखे बलवंत के नाम से 'प्रताप' में छपे क्रांतिकारी लेखों का सानी ढूँढ़ पाना कठिन है। गणेशशंकर विद्यार्थी के संपादकीयों को पढ़कर लोगों का लहू जोर मारने लगता था। कहने को तो हमारे यहाँ अच्छी नस्ल के पत्रकार पैदा करने के लिए पत्रकारिता विश्वविद्यालय संस्थान खोले गये हैं। ग्रामीण पत्रकारिता संस्थान भी स्थापित किये गये हैं। कई शिक्षा संस्थान पत्रकारिता की परीक्षाओं का आयोजन करते हैं एवं डिप्लोमें प्रदान करते हैं। पत्रकार संघ और प्रेस क्लब पत्रकारों को समय–समय पर उत्साहित और प्रेरित भी करते रहते हैं। यहाँ तक कि कई राज्यों में मृतक पत्रकारों के परिवारों की सहायता के लिए 'पत्रकार कल्याण कोष' भी स्थापित किये गए हैं। लेकिन निराश करनेवाली बात यह है कि अखबार से जुड़ा हर व्यक्ति पूर्ण पत्रकार नहीं है। कारण यह है कि अधिकांश पत्रकारों के लिए पत्रकारिता समाज व राष्ट्रसेवा न होकर मात्र जीवनोपार्जन का एक माध्यम हैं। हाँ, कुछ अवश्य ऐसे पत्रकार हैं, जो पत्रकारिता के प्रति गंभीर, प्रतिबद्ध और ईमानदार हैं तथा अपने संस्कारों और सिद्धांतों के साथ कतई समझौता नहीं करते हैं। वे पत्रकारिता के मायने बखूबी जानते हैं तथा मिशन व व्यवसाय में फर्क समझते हैं।

यह भी खुला सच है कि औद्योगिक क्रांति एवं पाश्चात्य संस्कृति के प्रभावों ने हमारे यहाँ के पत्र–पत्रिकाओं के स्वामियों को कुछ ज्यादा ही सियाना बना दिया है। आज का अखबार मालिक एक कुशल मनोवैज्ञानिक और चतुर गणितज्ञ है। यह अखबार का उपयोग निजी लाभ के लिए ज्यादा करता है। उसे राजनीतिक दलों से जुड़ने की ललक भी है। क्योंकि उसे नेताश्रय चाहिए, टिकट चाहिए और वित्तीय सहायता भी चाहिए। वह जी भरकर मीठा एवं विशुद्ध शोषण करता है, उन कर्मठ, प्रतिबद्ध और ईमानदार पत्रकारों का, जो पत्रकारिता को व्यावसायिकता की दलदल से निकालकर मिशनोन्मुख बनाने के लिए जोर मारते हैं और संघर्ष करते हैं। वह कदम–कदम पर सस्ते और घटिया समझौते व सौदे करता है, क्योंकि अखबार निकालना उसकी विवशता है और जरूरत भी। कुछ पत्र–पत्रिकाओं के मालिक ऐसे अवश्य हैं, जिन्होंने पत्रकारिता की मिशन प्रवृत्ति को गहरे में समझा है और कहीं भी समझौता नहीं किया। उन्होंने गलत को गलत कहा, सिद्ध किया, भ्रष्ट सरकारों को हिलाया, झकझोरा और यहाँ तक कि उनका तख्ता भी पलटा।

'संपादक' शब्द एवं पद दोनों बड़े अर्थपूर्ण, दायित्वपूर्ण हैं। पर इधर की 'मादक संस्कृति' और 'उपहार संस्कृति' ने संपादक एवं पत्रकारों की भूमिका पर बड़े पैने प्रश्न चिह्न लगा दिये हैं। लेखक की रचना पर गंभीरता से विचार न करना, रचना व फोटोग्राफ वापस न करके उन्हें अन्यत्र उपयोग में लाना, लेखक के पत्रों का उत्तर न देना, पारिश्रमिक भेजने में विलंब और मनमानीकरण, पत्रकारिता के नाम पर दलालीकरण आदि कृप्रवृतियों ने संपादक की छवि को मैला किया है। गणेशशंकर विद्यार्थी, बनारसी दास चतुर्वेदी और महावीर प्रसाद द्विवेदी अपने पत्रकारिता के जीवन में बहुत व्यस्त रहे, लेकिन वे लेखकों के पत्रों का उत्तर बराबर दिया करते थे। यदि इन व्यक्तियों में सौजन्य भाव न होता तो उनके पत्रों की इतनी कीमत न होती। यही वजह है कि उनके पत्रों का संकलन करके उन्हें छापा गया है। इनमें कुछ ऐसे गरिमापूर्ण पत्र भी हैं, जो लेखकों के साथ भाई–चारे के रिश्ते हैं। सवाल उठता है कि इधर के संपादक का लेखक के साथ क्या रिश्ता है।

आज जरूरत है कि संपादक, लेखकों के प्रति समदृष्टि रखे, सद्व्यवहार करे, सार्थक और छद्म लेखन में अंतर रेखांकित करे और जुझारू व उभरते लेखकों का मनोबल बढ़ाए। यदि साहित्यकारों की तरह वह भी चढ़ते सूर्य को ही नमस्कार करेगा, स्तरहीन खेमेबाजी से जुड़ेगा और उभरते लेखकों को मंच पर नहीं आने देगा तो वह संपादक कहलाने का हकदार ही नहीं है। लेकिन अपनी तपस्या के बल पर बने ऐसे भी संपादक हैं, जो मानवता, लेखकीय प्रतिभा व प्रतिष्ठा का बराबर ख्याल रखते हैं। व्यावसायिकता में रहते हुए भी उनकी मिशन प्रवृत्ति की कौंध को देखा जा सकता है। उनके अपने सिद्धांत हैं, कार्य–तरीके हैं और वे स्वयं में सुशिक्षित–प्रशिक्षित व अनुभव विशेषज्ञ हैं। इसी कारण वे पत्रकारिता में अपनी अलग से पहचान बनाए हुए हैं।

इस कड़वे सच से किसी को तिलमिलाहट हो सकती है कि कुछ अखबारों के दफ्तरों में आज का पत्रकार मात्र एक मुनीम है। ऐसे व्यावसायिक संस्थान में पत्रकारिता के बहाने नेपथ्य में उससे बहुत घटिया किस्म के कार्य लिये जाते हैं। पर पत्रकार मजबूर है, क्योंकि रोजी–रोटी का सवाल है। जमीन से जुड़ी हुई बात वह नहीं लिखता है। उसके लिए पत्रकारिता मिशन इसलिए नहीं है कि उसे अपनी दैनंदिन जरूरतों का ध्यान भी रखना पड़ता है। उधर मालिक खुद भी नहीं चाहता कि उसका अखबार सत्य और तथ्य से जुड़कर जनता के बीच में आए। एक जमाना था, जब 'प्रताप' प्रकाशित होकर दूर–दूर तक झोंपड़ियों और खंडहरों में पहुँचता था। तब पत्रकार रातों जागकर काम करते थे, ताकि लोगों में जज्बा पैदा हो। इधर काम को टाला जाता है, सस्ते व घटिया सौदे किये जाते हैं और गुटबाजी को तरजीह दी जाती है। न चाहते हुए भी पत्रकार अपनी कलम से वही चीज लिखता है, जो उससे उसका मालिक लिखवाना चाहता है। इस संदर्भ में कुछ हद तक पत्रकार भी जिम्मेदार हैं। वे अपने मालिक और स्वयं की स्वार्थसिद्धि के लिए व्यावसायिकता में ढलते हैं, क्योंकि उन्हें वहाँ रहकर बड़े पत्रकार बनाता है। यदि वे मालिक के इशारे पर व्यावसायिक नहीं बनते हैं, तो उन्हें निकाले जाने का भय रहता है। इस व्यावसायिक प्रवृत्ति के न केवल वरिष्ठ पत्रकार शिकार होते हैं, बल्कि कनिष्ठ पत्रकार भी अपने भविष्य को दागी बना लेते हैं। जो पत्रकार व्यावसायिकता में नहीं ढलते, उनके लिए अखबार संस्थान मात्र एक प्रशिक्षण केन्द्र बन जाता है। मिशनरी ये बन नहीं पाते और व्यावसायिकता में ढल नहीं सकते। यही बेबसी और तानव की पराकाष्टा उन्हें कहीं का नहीं रहने दी। पर ऐसे निर्भीक पत्रकार भी मौजूद हैं, जिन्होंने बोफोर्स एवं हर्षद मेहता जैसे राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय मामलों में छिपे रहस्यों का तह–दर–तह पर्दाफाश किया। निस्संदेह ऐसे पत्रकारों के लिए पत्रकारिता एक मिशन है।

यह पत्रकारिता को मिशन बनाना है तो सबसे पहले पत्र पत्रिकारिता के स्वामियों को आजादी के पहले की पत्रकारिता की विरासत को अपने जीवन में ईमानदारी से उतारना होगा एवं समाज व राष्ट्रसेवा को तरजीह देनी होगी। वे

अखबार मजबूरी में न निकालें, बल्कि एक निश्चित राष्ट्रीय लक्ष्य को सामने रखकर निकालें। उन्हें पाठकवर्ग का ध्यान में रखना है और समाज के साथ पूरा–पूरा न्याय करना है। वे यह भी समझ लें कि पत्रकारिता में राजनीति एवं अन्य अस्वस्थ घटकों की घुसपैठ से अखबार की गुणवत्ता पर छींटे पड़ते हैं और इसकी उम्र भी कम होती है। राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त कुछ पत्र–पत्रिकाओं का बंद होना इसी सच को उजाकर करता है।

संपादकों, पत्रकारों एवं लेखकों को हिम्मत, निर्भीकता और सच्चाई से लिखना चाहिए। बेशक वे विपक्ष की भूमिका नहीं निभा सकते, परन्तु उन्हें स्वस्थ आलोचक जरूर बनना चाहिए। जब गोरी सरकार ने स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका निभानेवाले क्रांतिकारियों के दमन के उद्देश्य से 'रोलेट एक्ट' पास किया तो झाबरमल्ल शर्मा ने 'कलकत्ता समाचार' में तीखे संपादकीय लिखकर निर्भीक पत्रकारिता का परिचय दिया था। आज भी देश में मौजूदा स्थितियों, चुनौतियों एवं धमकियों की निरंकुशता को देखते हुए वैसी ही निर्भीक पत्रकारिता की बेहद जरूरत है। आज हर संपादक, पत्रकार एवं लेखक को सेनानी की भूमिका निभानी है। यदि व्यावसायिक पत्रकारिता में पाक इरादों की शुरुआत होती है तो यह मिशन प्रवृत्ति का एक अंकुर होगा, जो कालांतर में विराट मिशन वृक्ष का आकार ले ही लेगा।

इधर कुछ समय से विदेशी मीडिया के शरारती इरादों को लेकर भारतीय पत्र–पत्रिकाओं की दुनिया में बौद्धिक चर्चाएँ, बहस–मुबाहिसे, गोष्ठियाँ तथा विचारोत्तेजक परिसंवाद जारी हैं, जो कई दृष्टियों से एक स्वस्थ चिंतन व प्रासंगिक प्रतिक्रिया है। कोई वैचारिक जिरह कर सकता है कि विदेशी पत्र–पत्रिकाओं के भारत में प्रकाशन से कोई खतरा नहीं है और हमें प्रतिस्पर्धा के लिए तैयार रहना चाहिए। क्या यह भी याद दिलाने की जरूरत है कि खतरा तो तब भी आँका नहीं गया था, जब मुट्ठीभर अंग्रेजों को भारत में व्यापार करने की उदार अनुमति दी गई थी। इसके बाद जो कुछ घटित हुआ, वह इतिहास में खुला पड़ा है। मत भूलिये कि शारीरिक गुलामी से सांस्कृतिक गुलामी कई गुना नुकसानदायक एवं विनाशकारी है। मूल्यांकन करके देख लीजिए कि विदेशी संचार माध्यमों से परोसी जा रही संस्कृति इधर की नन्हीं पीढ़ी का निर्माण कर रही है अथवा विनाश।

कुछ पत्रकारिता विशेषज्ञ यह भी दलील दे सकते हैं कि जब विदेशी लोग भारत में पुस्तकें एवं अन्य संदर्भित साहित्य प्रकाशित कर सकते हैं और रेडियो व टेलीविजन के प्रसारण कर सकते हैं, तो समाचार–पत्रों के प्रकाशन को बहिष्कृत क्यों किया जाए? दलील के उत्तर मे जवाबी यह है कि विश्वस्तर पर अभी समता तैयार ही नहीं हो पाई है कि विदेशी अखबार भारत में छपे और भारतीय अखबार विदेशों में प्रकाशित हों। इस सच्चाई को पंडित जवाहरलाल नेहरू भी भलीभाँति समझते थे। हाँ, आज से तकरीबन 120 वर्ष पहले राजा रामपाल सिंह ने 'हिन्दुस्तान' नाम का एक भारतीय अखबार इंग्लैंड से निकाला था, जो कई वर्षों तक प्रकाशित भी होता रहा। इधर के अखबार घराने इस दिशा में क्यों नहीं सोचते? मॉरिशस, फीजी आदि देशों में, जहाँ भारतीय का बहुमत है, संभावनाओं का पता लगाकर भारतीय पत्र–पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू किया जा सकता है, यद्यपि वहाँ हिन्दी में कुछ पत्र–पत्रिकाओं का स्थानीय स्तर पर प्रकाशन किया जा रहा है।

भारत जैसे लोकतंत्र में समाचार–पत्र की अन्य शुद्ध उद्योगों की तरह एक उद्योग मान लेना तथा उसपर औद्योगिक अर्थशास्त्र के नियमों को लागू करना अपरिपक्व समझदारी की बात होगी। उत्पाद होते हुए भी अखबार को न तो ओढ़ा जा सकता है और न ही इसे अन्य वस्तुओं की तरह दीर्घ समय के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। अखबार तो एक मिशन है, बौद्धिक खुराक है, देश का सजग प्रहरी है और घटनाओं का जागरूक प्रतिबिम्ब है। यह अलग बात है कि कुछ सरमायेदारों ने मिशन प्रवृत्ति को नेपथ्य में धकेलकर अखबार को एक व्यावसायिक उद्योग बना दिया है। उल्लेखनीय है कि उद्योग विकसित होता है, स्वस्थ रहता है, रुग्ण भी होता है और यदि समय पर उसकी नर्सिंग नहीं हुई, तो बंद भी हो जाता है, लेकिन अखबार एक बार शुरू होकर प्रकाशित होता रहता है अथवा प्रतिकूल स्थितियों में सीधा बंद हो जाता है। इसमें रुग्णता एवं नर्सिंग के अवसर नहीं के बराबर रहते हैं। यही वजह है कि हमारे यहाँ कई पत्र–पत्रिकाएँ सोडावाटर के जोश की तरह शुरू होती है और कुछ प्रयोगों के बाद बंद हो जाती है। अतः सवाल अखबार को निकालने का नहीं है, इससे अहम सवाल उसके निरंतर प्रकाशन का है।

इस संदर्भ में यह भी काबिलगौर है कि भारत की तुलना में विदेशों में पत्र–पत्रिकाएँ कम संख्या में प्रकाशित होते हैं। यही वजह है कि विदेशी अखबार बहुत समृद्ध हैं, जबकि भारत की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। भारतीय पत्रकारों में टीम भावना, सहयोग भावना एवं देशप्रेम की कमी है, जबकि विदेशी पत्रकार इस दिशा में बहुत प्रगाढ़ता लिये हुए। जिन अखबारों की भारत में विदेशी अखबारों के प्रकाशन में ज्यादा चिंता है, उन्हें प्रतिस्पर्धा स्वरूप अपने यहाँ पत्रकारिता के सुरक्षा–बल तैयार करने चाहिए। विदेशी हमलों का मुँहतोड़ जवाब देने की परंपरा भारत में सदा से ही रही है, यह भी सभी को मालूम है।

भारत के संदर्भ में विदेशी अखबारों के प्रभाव अच्छे नहीं पड़ेंगे, यह बिल्कुल तय है। वे भारत की खबरों को बहुत कम महत्व देंगे। ताजे प्रमाण एवं अनुभव आसपास बिखरे पड़े हैं कि 'लंदन टाइम्स' एवं 'न्यूयार्क टाइम्स' भारतीय खबरों को तब ही महत्व देते हैं, जब कोई मामला भारत के विरुद्ध जाता है। ऐसी स्थिति में वे उसे बढ़ा–चढ़ाकर तथा विदेशी रंग देकर छापते हैं, ताकि भारत की आलोचना करने का मौका मिल सके। जब ये अखबार भारत में आ जाएँगे और उन्होंने अपने ही देश की खबरों को प्रमुखता से छापा तो भारत क्या कर लेगा? क्या भारत इसका विरोध कर सकेगा? ऑपरेशन ब्लू स्टार, अयोध्याकांड, साम्प्रदायिक दंगों एवं मुम्बई बम विस्फोटों को विदेशी अखबारों ने जितना सुर्ख तरीके एवं प्रमुखता से छापा, शायद भारतीय अखबार नहीं छाप सके। पंजाब के बारे में अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति क्लिंटन की टिप्पणी को 'न्यूयार्क टाइम्स' कई दिन प्रमुखता से छापता रहा।

दक्षिण भारत जो इस समय चुपचाप बैठा दिल्ली की बातें सुन रहा है, उसे भी यह मालूम होना चाहिए कि विदेशी समाचार–पत्रों का सबसे पहला एवं प्रत्यक्ष प्रभाव उसी को झेलना पड़ेगा। कारण यह कि वहाँ हिन्दी का कम बोलवाला है और कई राज्यों में तो हिन्दी के विरोध का धुआँ प्रायः उठता ही रहता है। जाहिर है कि विदेशी अखबार सबसे पहले अपने पाँव दक्षिण भूमि पर ही फैलाएँगे, अंग्रेजी ईष्ट इंडिया कंपिनी की तर्ज पर। गोवा, नागालैंड, मिजोरम आदि भी इस प्रभाव की चपेट से बच नहीं पाएँगे। वे विदेशी पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से अपने धर्म का प्रचार भी कर सकते हैं, क्योंकि सारे राष्ट्र ईसाई मत के हैं। भारत की आजादी के बाद धर्म प्रचार–प्रसार में ठहराव की जो स्थिति आई है, उसे गति देने में उन्हें अच्छा मौका भी मिल सकेगा। अतः दक्षिण भारत को जाग जाना चाहिए।

यह भी दिन की तरह साफ है कि चीन, जापान, जर्मनी जैसे देश, जिन्हें अपनी भाषा का बहुत अभिमान है, वे भारत में आकर अपनी–अपनी भाषा में अपनी पत्र–पत्रिकाएँ नहीं चला सकते हैं, जबकि ये तीनों समृद्ध देश हैं। सवाल है कि यदि वे पत्र–पत्रिकाएँ निकालते भी हैं, तो उन्हें कौन पढ़ेगा? इन भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त भारतीय पाठकों का कितना प्रतिशत है? रूस पहले ही अपनी पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन का प्रयोग करके अब शांत हो चुका है। मैदान में आनेवाले एवं प्रतिस्पर्धा करनेवाले मुख्यतः इंग्लैंड और अमेरिका देश ही होंगे। भारतभूमि पर भारत, इंग्लैंड और अमेरिका के बीच पत्रकारिता का

त्रिकोणी मुकाबला होगा। प्रश्न है कि विदेशी अखबारों को प्रतिस्पर्धात्मक प्रयोगों के लिए भारत ही क्यों नजर आता है और इसके पड़ोसी देश क्यों नहीं दिखाई देते, जिन्हें वे लाँघकर भारत आना चाहते हैं।

यदि विदेशी अखबारों के भारतीय लोकतंत्र के परिप्रेक्ष्य में उद्देश्य की बात छेड़ दी जाए तो यह कहने में संकोच नहीं है वे भारत से इसलिए जुड़ना चाहेंगे, ताकि वे भारतीय कमजोरियों का अध्ययन–विश्लेषण कर सकें। उनकी आत्मा तो अपनी जन्मभूमि में रहेगी, लेकिन वे शारीरिक रूप से भारत के साथ जुड़ने का कुशल नाटक करेंगे। यह भी कोई कम चौंकानेवाला तथ्य नहीं कि मार्क टुली ने प्रेमचंद के गाँव का दौरा किया है और खबर है कि वे प्रेमचंद के पात्रों से बहुत प्रभावित हुए हैं और उनपर शोध कार्य कर चुके हैं। इस शोध कार्य के निष्कर्षों में भारतीयता की कैसी अनुगूँज है, यह समय बता देगा।

यह सवाल भी कोई कम विचारणीय नहीं है कि विदेशी अखबारों के आने से क्या बौद्धिक पलायन होगा?यह सच है कि तगड़ी पगार एवं सुख–सुविधाओं को देखकर हमारे यहाँ के कुछ ख्यातिप्राप्त पत्रकार विदेशी अखबारों से जुड़ने की कोशिश करेंगे तथा कुछ वरिष्ठ पत्रकारों की लार टपकने लगेगी। पर यह भी उतना ही सच है कि विदेशी अखबारों में जिस स्तर, क्षमता एवं गुणवत्ता सम्पन्न भारतीय पत्रकारों की उन्हें आवश्यकता होगी, वे बहुत नगण्य है। यदि कुछ पत्रकार लिये भी जाते हैं, तो उनकी कलम वही इबारत लिखेगी, जो विदेशी अखबार चाहेंगे। क्या एक आजाद लोकतंत्र देश में बौद्धिक गुलामी नहीं होगी?यदि हमारे यहाँ पत्रकारों की समृद्ध व गुणात्मक जमात होगी, हमने पत्रकारिता के सही चरित्र को समझा होता और मिशन प्रवृत्ति पर व्यावसायिकता को हावी न होने दिया होता, तो आज हमें विदेशी अखबारों की संभावित दस्तक से डर नहीं लगना था।

अब जरूरी यह हो जाता है कि अखिल भारतीय स्तर पर समाचार–पत्रों के संगठन एकजुट होकर विदेशी अखबारों के भारत में प्रस्तावित प्रकाशन के विरुद्ध मजबूत वातावरण तैयार करें। सरकार को भी इस विषय पर गंभीरता से सोचना चाहिए। पर यह निश्चित है कि विदेशी समाचार–पत्रों के प्रवेश से राजस्व हानि होगी। क्या यह याद कराना जरूरी है कि विदेशी टी.वी. चैनलों की झोली में लगभग सारे विज्ञापन चले गये हैं, जो भारतीय दूरदर्शन की आय का एक खास जरिया था। दायित्व यह भी बन जाता है कि हम भारतीय पत्र–पत्रिकाओं को सुदूर पाठकों तक पहुँचाएँ, ताकि उनमें संवादहीनता की स्थिति न बनी रहे। इनसे जुड़कर वे इन पत्र–पत्रिकाओं को मजबूती दे सकते हैं।

लघुकथाएं

केदारनाथ सविता
सिंहगढ़ की गली लालडिग्गी,
मीरजापुर, उप्र. मो.–9935685068

लेबर

सुबह आठ बजे रजिन्दर की पत्नी दोपहर का खाना गमछे में बाँधकर उसे पकड़ाते हुए बोली–''कोशिश करना कि आज कहीं काम मिल जाए। वैसे आज मैं गाँव के प्रधान के पास फिर जाऊँगी। मनरेगा रजिस्टर में वे नाम लिख देंगे, तब बिना किये बैंक के खाते में मजदूरी आती रहेगी। उसमें से प्रधान भी अपना हिस्सा लेते हैं। मुझे पता है।''

रजिन्दर हाँ कहता हुआ अपनी बिना पंखी व मुठिया वाली साइकिल लेकर चल दिया। रजिन्दर आलसी था। वह कठिन मेहनतवाला काम नहीं करना चाहता था। वह जानता था कि काम न करने पर उसकी पत्नी कोई न कोई उपाय करके रसोई व्यवस्था कर ही लेती है।

बाजार में घंटाघर चौराहे पर रजिन्दर जाकर बैठ गया। वहाँ सुरजू, मोनू, कैलास आदि कई उसके साथी भी बैठे थे। उसमें लोहार, बढ़ई, राजगीर, मिस्त्री, बेलदार सभी थे। कुछ का ध्यान काम पाने की लालसा में था तो कुछ का रेजा (महिला मजदूरों) लोगों से चुहलबाजी करने में था। आज धूप तेज होने के कारण कुछ पीपल के नीचे बैठे हथेली में चूना के साथ तम्बाकू मल रहे थे।

तभी एक अधेड़ व्यक्ति रजिन्दर के पास आकर बोला–''बेलदारी करोगे?''

''हाँ करूँगा।''

''कितनी मजदूरी लोगे?''

''कहाँ काम करना है?क्या काम करना है?गड्ढा खोदना है या सिमेंट–बालू का मसाला बनाना है?''

वह लगा इंटरव्यू लेने–''दीवाल उठ रहा है कि छत की ढलाई है?नीचे छाया में काम करना है कि छत पर धूप में काम करना है?कितने दिन का काम है?अकेले मुझे चलना है कि और भी लेबर ले चलेंगे?

इतने प्रश्न एक साथ सुनकर वह व्यक्ति सकपका गया। तभी एक फटेहाल युवक आकर बोला–''चलिये बाबूजी, जो भी काम होगा, मैं कर दूँगा। जो मजदूरी आजकल चल रही है, दे दीजिएगा। वह व्यक्ति उस युवक को साथ लेकर चल दिया।''

2. हल्के आभूषण

विजय ने पहलेपहल अपनी पुत्री की शादी वाराणसी में तय किया था तो बेटा बड़ा, लेकिन पहली पुत्री की जिम्मेवारी से मुक्त हो जाना चाहते थे। उनकी पुत्री अर्चना ने रात–रातभर जागकर पढ़ाई करके एम.एससी. व बी.एड. किया था। वह सैदव प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होती रही और सरकारी प्राथमिक विद्यालय में दो वर्ष से आध्यापिका हो गयी थी। स्वयं हर माह वेतन पानेवाली पुत्री की शादी में विजय को कार, फर्नीचर, गहने, गृहस्थी के सब सामान देने पड़े। नकदी भी कुछ देने पड़े।

शादी के बाद अर्चना की सास ने जो आभूषण चढ़ाये थे, किसी बहाने से वापस ले लिये। जो आभूषण उसे मैके से मिले थे, उन्हें देखकर बोली–''इतने हल्के वजन के जेवर लाये हो। मुँह से फूँक मारो तो उड़ जायेंगे।''

ससुराल में उसकी पढ़ाई की कोई कीमत नहीं थी। थी तो केवल उसके वेतन की। जिस माह वह अपने पूरे वेतन ससुराल में न देती, उस माह उसे टार्चर किया जाता। जैसे कि सुबह उसे सभी कमरों में झाड़ू लगाना, किचन का पूरा काम करना। सबको नाश्ता–चाय पहुँचाना। कपड़े धुलने आदि के बाद स्कूल के लिए खुद तैयार होना पड़ता था।

झाड़ू लगाने के बाद सास दूबारा झाड़ू लगाकर पलंग के नीचे से कूड़ा निकालकर कहती–''देखो, ऐसे झाड़ू लगाया जाता है। इतना कूड़ा छोड़ दी थी कमरे में। हर काम जल्दबाजी में नहीं, ठीक ढंग से किया करो। बालकनी में झाड़ू नहीं लगाती हो। फिर तुम बालकनी में पैर मत रखना, उधर ही रहना। कल तुम बिना किचन साफ किये स्कूल चली गयी थी, यह ठीक नहीं है।''

अर्चना को घरेलू काम की वजह से स्कूल में देर हो जाती, तो वहाँ भी उसे डाँट पड़ती। कभी–कभी हाजिरी में हेड मास्टर एस.डी.आई पहुँचकर लाल निशान लगा देते थे। पर अर्चना ने कभी अपने पिता को कुछ नहीं बताया।

आलेख

सुभाषचन्द्र बोस की मौत का राज आखिर कब खुलेगा?

रंजना मिश्रा
कानपुर उत्तरप्रदेश
मो0 9336111418

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने इंडिया गेट पर नेताजी सुभाषचंद्र बोस की भव्य ग्रेनाइट प्रतिमा स्थापित करने का ऐलान किया है। फिलहाल होलोग्राम की प्रतिमा का अनावरण हो गया है। इतना ही नहीं, इससे पहले मोदी सरकार इस बात की भी घोषणा कर चुकी है कि अबसे गणतंत्र दिवस समारोह की शुरुआत नेताजी के जन्मदिन यानी 23 जनवरी से शुरू होगी। पिछलेसाल पीएम मोदी ने नेताजी के जन्मदिन को पराक्रम दिवस के रूप में मनाने की घोषणा की थी। केन्द्र की इन कोशिशों के बीच पं0 बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी भी पीछे नहीं रहना चाहती। ऐसे में वे एक के बाद बड़ी घोषनाएँ करने में लगी हैं। लेकिन इसके साथ ही ममता बनर्जी के बहाने केन्द्र सरकार पर निशाना भी साध रही हैं। ममता बनर्जी ने ट्वीट कर इस बात की भी माँग की थी कि नेताजी के जन्मदिवस को राष्ट्रीय अवकाश घोषित किया जाए। लेकिन बीजेपी ममता बनर्जी की इस माँग पर पलटवार करते हुए कहा कि छुट्टी देना नेताजी के प्रति कोई सम्मान नहीं है, नेताजी ने कब अवकाश लिया था?नेताजी की सच्ची श्रद्धांजलि काम करके ही दी जानी चाहिए, जैसा कि मोदीजी कर रहे हैं। आजादी के इतने वर्षों बाद भी देश की जनता के हृदय में नेताजी सुभाषचंद्र बोस एक महानायक के रूप में स्थापित हैं और इंडियागेट में उनकी प्रतिमा स्थापित करके देश उन्हें एक छोटी–सी श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा है। लेकिन देशवासियों के मन में एक सवाल आज भी जिंदा है कि आखिर नेताजी की मौत के पीछे का सच क्या है?

अगर इतिहास की मानें तो 18 अगस्त, 1945 के दिन एक हवाई दुर्घटना से नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की मौत हुई। दुर्घटना की जगह बताई गई ताइपेई, जो अब ताइवान का हिस्सा है। सबूत के तौर पर जापानी सरकार ने हवाई दुर्घटना की कुछ तस्वीरें जारी कीं। ये तस्वीर मौत के राज को जितना सुलझाती हैं, शायद उससे ज्यादा उसे उलझाती भी हैं। ताइवान सरकार ने दस्तावेजी सबूत पेश किये हैं कि 18 अगस्त की उस तारीख को उनके यहाँ कोई भी विमान दुर्घटना नहीं हुई है। ताइवान सरकार ने यह कहकर सनसनी मचा दी कि सुभाषचन्द्र बोस के मरने की जो तारीख बताई जा रही है, उस तारीख या उस तारीख के आसपास कोई हवाई दुर्घटना उनके यहाँ हुई ही नहीं। ताइवान सरकार ने बताया कि 14 अगस्त, 1945 से लेकर 20 सितम्बर, 1945 के बीच उनके यहाँ कोई हवाई दुर्घटना हुई ही नहीं। 18 अगस्त इन दोनों तारीखों के बीच पड़ता है। सितंबर 1945 की शुरुआत में अमेरिकी खुफिया एजेंसी की टीम भी उस जगह पर पहुँची, जिस जगह पर हवाई दुर्घटना होने की बात कही जाती है। उनके हाथ भी कोई सबूत नहीं लगा। अब सवाल उठता है कि अगर वहाँ कोई हवाई दुर्घटना नहीं हुई तो जो तस्वीर जारी की गई वह किस जगह की है?यह कैसे मुमकिन है कि अगर यह दुर्घटना हुई तो उसका रिकार्ड ताइवान सरकार के पास नहीं है?बोस को जिस अस्पताल में भर्ती कराया गया और उनकी मृत्यु के बाद, जिस श्मशान में उन्हें जलाए जाने की बात कही गई, इन दोनों जगहों के रजिस्टर में उनका नाम कहीं नहीं है। हर उस जगह से बोस का नाम नदारद है, जहाँ रिकार्ड में उनका नाम होना चाहिए था। माना जाता है कि बोस जापानी आर्मी के एक बड़े अधिकारी, पायलट और को–पायलट के साथ चुपचाप रूस जाने की तैयारी में थे। इसीलिए इन चारों का नाम यात्रियों की लिस्ट में नहीं था। जो लोग हवाई दुर्घटना में उसके मरने की पुष्टि करते हैं, उन्हें इन सवालों का जवाब भी तो देना होगा।

कहा जाता है कि बोस के सहयोगी हबीबुर्रहमान भी उसी हवाई जहाज में उनके साथ सफर कर रहे थे, जो दुर्घटनाग्रस्त हुआ। जाहिर है कि रहमान ही वह व्यक्ति हो सकते थे, जो इस रहस्य का पर्दा उठा सकते थे। लेकिन रहमान के बदलते बयानों ने इस राज को और भी उलझा दिया। जब हबीबुर्रहमान से पूछा गया कि ये कैसे संभव है कि नेताजी को बचाने में उन्हें खरोच तक नहीं आई, तो वे चुप हो गये। द्वितीय विश्वयुद्ध के उस दौर में सुभाषचन्द्र बोस जापान की मदद कर रहे थे। इसलिए जापान की सरकार में उनकी अच्छी खासी हैसियत थी। उनकी मौत से जुड़े सबूतों को लेकर जापान सरकार और बोस के निकट सहयोगी रहे हबीबुर्रहमान की बातों में काफी विरोधाभास दिखते हैं। जापान कहता है कि उनकी अन्त्येष्टि 21 अगस्त को हुई, जबकि हबीबुर्रहमान ये तारीख 22 अगस्त को बताते थे। जापान उनके अस्थिकलश को अपने यहाँ आने की तारीख 1 सितम्बर, 1945 बताता है। हबीबुर्रहमान इससे 5 दिन आगे 6 सितम्बर की तारीख बताते रहे। अस्थिकलश का रहस्य भी कम पेचीदा नहीं है। तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के निजी सचिव एम ओ मथाई ने 2 सितम्बर, 1954 को लिखी अपनी औपचारिक चिट्ठी में माना है कि अस्थिकलश और 200 रुपये विदेश मंत्रालय को मिल गये। चिट्ठी में ये तो कहा गया कि 200 रुपये बोस की बनाई इंडियन नेशनल आर्मी यानी आई एन ए के रिलीफ फंड में डाल रहे हैं, लेकिन अस्थिकलश कहाँ रखा गया, इसका कोई जिक्र नहीं था। बात यहीं खत्म नहीं हुई। लगभग 50 साल बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेई जब जापान गये तो रैंकोजी के उस मंदिर में भी माथा टेकने गये, जहाँ अब भी सुभाषचन्द्र बोस के अस्थिकलश होने की बात कही जाती है। उन्होंने आधिकारिक तौर लिखे एक पत्र में कहा कि अभी अस्थिकलश को जापान से भारत लाने का विचार नहीं है। सवाल उठता है कि अगर कुछ देर के लिए हम हवाई हादसे में नेताजी की मौत को सच मान भी लें तो फिर कौन सा अस्थिकलश असली है?वह जो रैंकोजी मंदिर में रखा गया है या फिर जिसके पाने की बात नेहरू जी के निजी सचिव कर रहे थे?

11 अगस्त, 1945 जगह थी सिंगापुर, बोस को खबर मिलती है कि हिरोशिमा और नागासाकी पर हुई बमबारी के बाद जापान ने सरैंडर करने का मन बना लिया है। जापान के साथ–साथ आजाद हिन्द फौज को भी सरेंडर करना था। हथियार डालने का फैसला इतना आसान नहीं था। इसके लिए जापान से सलाह मशविरा करना भी जरूरी था। सुबह साढ़े नौ बजे बोस सिंगापुर से बैंकॉक के लिए रवाना होते हैं। वहाँ आला अधिकारयों से मिलकर भी कोई हल नहीं निकालता है। बोस जापान आर्मी के हेड क्वार्टर साइगॉन के लिए निकल जाते हैं। वहाँ से उन्हें टोक्यो जाने के लिए कहा जाता है। बोस के साथ उनके और भी सहयोगी जाना चाहते हैं। लेकिन मिन्नतों के बाद उनके साथ एक सहयोगी को ही जाने की इजाजत मिलती है। अपने सहयोगी हबीबुर्रहमान को बोस अपने साथ ले जाते हैं। 18 अगस्त को दिन में हवाई जहाज तूरान होते हुए फार्मूसा पहुँचता है। ढाई बजे ईन्धन भरने के बाद जब जहाज उड़ता है तो अपना नियंत्रण खो देता है और एक धमाके के साथ जमीन पर गिर जाता है।

पटना के चश्मदीद गवाह और बोस के सहयोगी हबीबुर्रहमान का कहना था कि बोस जिस सीट पर बैठे थे, उस सीट के ऊपर तेल की टंकी थी। इसीलिए उसके शरीर में तेजी से आग फैल गई। रहमान के मुताबिक उनके शरीर को सही सलामत रखने के लिए कोई सबूत नहीं मिला, इसलिए उन्होंने अंतिम संस्कार की इजाजत दे दी। पूरे घटनाक्रम के एकमात्र गवाह रहमान ही थे। इसपर उन्होंने सच या झूठ जो भी कहा, उसपर भरोसा करने के अलावा कोई और चारा नहीं था।

रहमान की जुबानी मौत की ये कहानी अपने आपमें ढेरों सवाल खड़े करती है, मसलन जिस डॉक्टर ने दुर्घटना के बाद बोस का इलाज किया, उसे बोस के बारे में कुछ भी नहीं बताया गया था। उनकी मौत होने के बाद डॉक्टर को

बताया गया कि ये सुभाषचन्द्र बोस हैं। नेताजी जिस हवाई जहाज से सफर कर रहे थे, उसमें वो तीन चार सहयोगियों को भी साथ ले जाना चाहते थे। उनसे कहा गया कि विमान में काफी महत्वपूर्ण लोक सफर कर रहे हैं, इसलिए एक और आदमी को ही साथ ले जाने की गुजाइश थी। इस बात को मान लें कि बोस की मौत के सबूत पुख्ता नहीं है, लेकिन उस हवाई जहाज में इतने महत्वपूर्ण लोग सफर कर रहे थे, तो उनकी खोज–खबर किसी ने क्यों नहीं ली?आखिर वो लोग कौन थे?बोस की मौत इस खबर के बाद अलग–अलग जाँच एजेंसियों ने रहमान से पूछताछ की। रहमान के अलग–अलग बयानों से दो बातें बाहर निकलकर आयीं। या तो बोस उस दुर्घटना में मारे गए या फिर किसी सोची समझी रणनीति के तहत बोस को जापान से बाहर निकालने के लिए हवाई दुर्घटना में मरने की खबर फैलायी गई।

अमेरिका के खुफिया एजेंसी ने बोस के मरने की जो तारीख बताई, उसके ठीक दस दिन बाद एक वायरलेस संदेश सुना गया। यह संदेश जापान के साइगॉन से जारी किया गया था, जिसमें कहा गया था कि बोस हवाई रास्ते से मंचूरिया के लिए निकले हैं। मंचूरिया रूस के बॉर्डर के करीब है। अगर उस समय के हालात पर गौर करें तो नेताजी के रूस जाने की कहानी को बल मिलता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में बुरी तरह हारने के बाद जापान सरेंडर कर रहा था। ऐसे में जापान के मददगार रहे बोस को एक सुरक्षित जगह की तलाश थी। भारत का हिमायती रहा रूस ही एक ऐसी जगह हो सकता था।

मई 1946 की ब्रिटिश इंटेलिजेंस की रिपोर्ट बताती है कि बोस रूस में थे। 1945 के बाद ब्रिटिश रिपोर्ट में बार–बार ये बात आने लगी कि नेताजी रूस में है। मिलिट्री इंटेलिजेंस की रिपोर्ट भी इस बात की पुष्टि करती है। कहा गया था कि बोस के साथ जापानी आर्मी का एक बड़ा अधिकारी जनरल शेडई भी विमान दुर्घटना में मारा गया, लेकिन उनके बारे में भी जापान सरकार कोई ठोस सबूत नहीं दे पाई। जापान के उस समय के आर्मी हेडक्वार्टर साइगॉन से मिले दस्तावेज भी बताते हैं कि बोस ने जून 1945 में जापान से रूस जाने की इजाजत माँगी थी। बोस ने जुलाई 1945 में फिर रूस जाने की दरख्वास्त की। लेकिन उन्हें रूस के बजाय टोक्यो जाने की सलाह दी गयी। बोस जनरल शेडई के साथ उसी विमान से जा रहे थे, जो मंचूरिया होते हुए रूस जाता। जापान सरकार के पास से जो दस्तावेज मिले हैं, उनमें यह भी साफ बताया गया कि जापान उन्हें मंचूरिया भेजने के लिए तैयार था, लेकिन मंचूरिया से रूस जाने का रास्ता, खूद नेताजी को ढूंढने की बात कही गई थी।

18 अगस्त, 1945 के दिन बोस हवाई दुर्घटना में नहीं मरे थे। ब्रिटिश गृहमंत्रालय का एक दस्तावेज भी इसी तर्क को मजबूत करता है। 23 अगस्त, 1945 की मोहर लगे इस दस्तावेज में उन संभावनाओं पर विचार किया गया है कि अगर बोस पर अंदर या बाहर केस चलाया गया तो उसके क्या–क्या आधार होंगे। बड़ा सवाल यह है कि अगर 18 अगस्त, 1945 को बोस की विमान दुर्घटना में मौत हो गई थी तो फिर 23 अगस्त, 1945 को उनके ऊपर केस चलाने की बात कहाँ से उठती है?बहुत से लोगों का मानना है कि वह रूस के रास्ते बचते–बचाते भारत पहुँच गये। उस समय इस बात की काफी हवा मिली थी कि नेताजी फैजाबाद में भगवानजी के नाम से रह रहे थे। बोस जब भी कोई चीज पढ़ते थे, उसके किनारे वह कुछ न कुछ टिप्पणियाँ लिखते थे। भगवानजी भी ऐसा ही करते थे। हैंडराइटिंग एक्सपर्ट्स की राय में दोनों लिखावटें एक ही व्यक्ति की हैं। फैजाबाद में भगवान जी ने अपने रहने के लिए जो कमरा चुना, वो एक सुरक्षित इलाके में था, लेकिन अगर किसी खास परिस्थिति में वहाँ से बच निकलने की जरूरत हो तो उसके लिए भी वो एक माकूल जगह थी। कमरे में रखे आसपास के देशों के नक्शे भी बड़े सवाल खड़े करते हैं कि एक संत को आखिर इन चीजों की क्या जरूरत थी?लेकिन बोस के रिश्तेदार, आजाद हिंद फौज के उनके सहयोगी और इतिहासकारों ने भगवानजी की इस कहानी को भरोसे के लायक नहीं माना। भगवानजी की कहानी भी एक सवाल उठाती है कि अगर भगवान जी ही असल में सुभाषचंद्र बोस थे, तो वो सामने क्यों नहीं आए?इतिहास में लिखी सुभाषचंद्र बोस की मौत की कहानी हर पीढ़ी दिलचस्पी से पढ़ती रही है और इसे आनेवाली पीढ़ी को सौंप जाती है। देश के आम आदमी के लिए ज्यादा से ज्यादा ये बहस का मुद्दा है कि हवाई दुर्घटना में उनकी मौत हुई थी या नहीं?बोस के रिश्तेदारों और उनके निकट सहयोगियों में भी उनकी मौत को लेकर एक राय नहीं बन सकी है। सबसे ज्यादा संदिग्ध भूमिका सरकार और कमिश्नर की रही, जो इतने सालों बाद भी कोई मुकम्मल तस्वीर नहीं रख सके। आम आदमी के जेहन में यह सवाल आज भी आता है कि अगर वह होते तो कांग्रेस और देश का स्वरूप कैसा होता?क्या कांग्रेस की उस समय की राजनीति में वह फिट बैठते?क्या कांग्रेस के बड़े नेता बोस के लिए वापसी की गुंजाइश छोड़ते?सच तो यह है कि उन नेताओं की आँख में बोस खटकते थे। लेकिन देश की जनता के लिए आज भी सुभाषचंद्र बोस एक महानायक है और वो चाहती है कि उनकी मौत के राज से पर्दा उठे।

गज़लें

डा. अंजना वर्मा
भोगनहल्ली, बैंगलुर
मो. : 9572991995

1

कहीं भी मैं चली जाऊँ

कहीं भी मैं चली जाऊँ तू मेरे साथ होता है
हवा में तेरी खुशबू है यही अहसास होता है
कहाँ साया भी देता साथ तम में छोड़ देता है
अँधेरे में सदा थामे तू मेरा हाथ होता है
सताता ही रहा मौसम खिजाँ आई चली आँधी
जिसे कुरबत मिली तेरी कहाँ बर्बाद होता है
किसी भी बात में मेरी हमेशा ही हुआ शामिल
भला शामिल से क्या कहना छुपा क्या राज होता है
अगर तू दूर जो होता तुझे आवाज भी देती
पुकारूँ क्या जो छाया से भी बढ़कर खास होता है।

2

तोड़कर संवाद सारे

तोड़कर संवाद सारे कहाँ भागा जा रहा है
आदमी दो पल भी देने में बहुत कतरा रहा है
दायरे अपने सुखों के इस तरह बढ़ते गए हैं
फासले अपनों में कितना रोज होता जा रहा है
सो रहे हो तुम लिहाफों में तो ये भी सोच लेना
शीत का मौसम कहीं चादर में कटता जा रहा है
अजनबी था चाँद लेकिन रोज उसको थे बुलाते
बनके परिचित जिंदगी से दूर होता जा रहा है
काटते ही आ रहे हैं, जंगलों को अब तलक हम
हैं घने जंगल अभी भी कौन बोता जा रहा है।

आलेख

बहुरूपिया अभिनय की लोक परंपरा

अश्विनी कुमार आलोक
पत्रकार कॉलोनी, महनार, वैशाली
मो0 8789335785

'बहुरूपिया' अर्थात् अनेक रूपो को धारण करने और उन रूपों से सामान्य लोगों में अलग–अलग प्रकार के प्रभाव डालने की परंपरा देश के किसी एक भाग में सीमित कला नहीं है। वैसे भी कलाएँ देश और समय की सीमाओं से आबद्ध नहीं होतीं। उनपर जितने सारे बाह्य प्रभाव आरोपित किये जायें, उनकी स्वाभाविकता अधिक प्रबल और प्रवाहजन्य होती है। इसीलिए लोककलाएँ आदिम स्वभावों की सांस्कृतिक सहमति एवं उसके सामाजिक साहचर्य से आगे बढ़ती है।

'बहुरूपिया' यद्यपि देश के कुछ राज्यों में अधिक प्रचलित लोककला रही और इसने अनेक आदिम जातियों को जीविका के साधन भी उपलब्ध कराये, तथापि यह उन जातियों एवं सभ्य समाज के समुदायों में भी प्रचलित रही, जो आदिम कलाओं को पुरातनपंथी एवं अग्राह्य प्रभाव मानते रहे।

'बहुरूपिया' वस्त्रों एवं नकली शस्त्रों से स्वांग रचने की कला है। बिहार में दशहरे का त्योहार बहुरूपियों के बिना अनाकर्षक माना जाता था। दशहरे के दसों दिन बहुरूपिये अलग–अलग रूप बनाकर लोगों का मनोरंजन करते थे एवं मेले में जुटे लोगों से धन प्राप्त कर अपनी जीविका चलाते थे। प्रायः पुरुष ही अलग–अलग वेश धारण करते थे। वे देवी दुर्गा के दसो रूपों के अतिरिक्त स्त्रीवेश में पनिहारिन, डायन, लैला, प्रेम में धोखा खायी हुई स्त्री के स्वांग रचते थे। स्वांग रचने में कम मूल्य के आभूषण, वस्त्र, कोयले की धूल, मुर्दा शंख, टेलकम पावडर आदि का उपयोग करते थे। अलग–अलग गाँवों में बहरूपियों की अलग–अलग मंडलियाँ घूमती थीं। घरों एवं आंगनों में महिलाओं एवं बच्चों को रिझाने में इन्हें प्रवीणता हासिल थी। घरों के अतिरिक्त दरवाजों, चौराहों एवं हाट–बाजारों की रौनक बढ़ाने में बहुरूपियों का पर्याप्त योगदान होता था। लैला–मजनूं एवं शीरी फरहाद बनकर बहुरूपियों की जोड़ियाँ अपने अभिनय एवं काव्यमय संवादों से ऐसा प्रभाव डालती थीं कि लोग अपने काम छोड़कर इनके पीछे खड़े हो जाते थे।

बहुरूपिया बनने की कला वंशानुगत भी मानी गयी है, लेकिन कुछ विद्वानों का मत है कि बहरूपिये लैंगिक स्तर पर असामान्य होते हैं, इसलिए इस कला को वंशानुगत नहीं कह सकते। डॉ. महेश कुमार सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'बिहार की नाटकीय लोकविधाएँ' में लिखा है–''अधिकांश बहुरूपियों की जाँच–पड़ताल करने के बाद यह रहस्योद्घाटन हुआ कि ये जनखे या नपुंसक है।

अपनी पुस्तक 'लोकधर्मी नाट्य परंपरा' में डॉ. श्याम परमार ने बहुरूपिया कला को लोकनाटक माना है। बहुरूपिये अपने स्वांग से मूलपात्र के संबंध में साकार सूचना देते हैं अर्थात् मंचीय नाटक की तरह पात्रों का परिचय देने के लिए किसी सूत्रधार की आवश्यकता नहीं होती। बहुरूपिये नाट्यपात्रों के संपूर्ण चरित्र का उद्घाटन कम समय में सांकेतिक रूप से कर देते हैं। डॉ. महेश कुमार सिन्हा के अनुसार–''जहाँ तक बहुरूपिया के नाट्यशिल्प का प्रश्न है, इस तरह की कोई चीज इस लोकविधा के साथ नहीं हो सकती, क्योंकि न तो इसमें कोई कथानक होता है और न कोई संवाद। समय और अवसर के अनुरूप ही बहुरूपिया अलग–अलग अनुकृतियों एवं अलग–अलग वेश धारण कर लोगों का मनोरंजन करता है। अपने परिवर्तनशील वेश–विन्यास और किसी मूलपात्र की मूक अनुकृति के कारण ही यह नाटकीय व्यक्तित्व बन पाता है। इसलिए बहुरूपिया लोकनाट्य के संबंध में नाट्यशिल्प की चर्चा संभव नहीं है।

बहुरूपियों की मंडली निर्धारित दिशा की ओर निकलती थी। एक जगह वे लोग अस्थायी आश्रय बनाते थे। प्रायः हफ्ते भर अलग–अलग रूपों में लोगों का मनोरंजन करने के बाद अंतिम दिन वे घरवालों एवं दुकानदारों से पैसे वसूलते थे। फिर अगले नगर या गाँव की ओर प्रस्थान कर जाते थे। बहुरूपियों का जीवन प्रायः घुमन्तुओं की तरह होता था, लेकिन ये घुमन्तू जातियों से नहीं होते थे।

बहुरूपियों या बहुरूपिया कला का उद्भव अनेक विद्वानों ने मुगलकाल से होना माना है। माना गया है कि चारण–भाट जिस प्रकार राजदरबारों में विरुदावली वर्णन अथवा सौंदर्य–गायन से राजाओं, रानियों, राजकुमारों, सैन्य अधिकारियों एवं श्रेष्ठियों का मनोरंजन करते थे, उसी प्रकार बहुरूपिया कला के माध्यम से भी अनेक लोगों ने अपनी जीविका के साधन बनाए।

बहुरूपिया कला और इससे जुड़े कलाकारों के सामने संकट है। इस प्रकार की कला दम तोड़ रही है। नारायण बारेठ के शब्दों में–''भारत में बहु रूप धरण करने की कला बहुत पुरानी है। राजाओं–महाराजाओं के समय बहुरूपिया कलाकारों को हुकूमतों का सहारा मिलता था। लेकिन अब ये कलाकार और कला दोनों मुश्किल में है।''

बहुरूपिये सामाजिक सद्भाव को प्रोत्साहित करते रहे हैं। हिन्दू धर्म के बहुरूपियों ने मुस्लिम पात्रों और मुसलमान धर्म के बहुरूपियों ने हिन्दू धर्म के पात्रों को रूपायित करने से परहेज नहीं किया। दिल्ली में बहुरूपिया कला को कई वर्षों से प्रोत्साहित कर रहे अब्दुल हमीद का मानना है कि बहुरूपिया कलाकार भले ही देश के अनेक राज्यों में विस्तृत हैं, पर सर्वाधिक संख्या में राजस्थान में पाये जाते हैं। राजस्थान में इन कलाकारों की बहुतायत का कारण राजस्थान का राज–शासन इतिहास रहा है।

बहुरूपिये सिर्फ मनोरंजन के लिए स्वांग धारण नहीं करते थे। ये एक राजपरिवार के लिए जासूसी भी करते थे। जासूसी के लिए बहुरूपियों की प्रशंसा और प्रतिष्ठा होती थी। इनकी ईमानदारी और चातुर्य के लिए इन्हें राजपरिवार 'उमरयार' कहकर पुकारते थे। राजपूत राजाओं ने बहुरूपियों के रूप बदलने की कला की बहुत तारीफ की। अजमेर में ख्वाजा के उर्स के दौरान बहुरूपिये अपने समुदाय के लोगों की समस्याएँ भी सुलझाते थे और आपसी विवाद को भाईचारे से निबटाते थे। बहुरूपियों ने सरकारी नियमों से अलग अपनी पंचायतें लगाकर अनेक विवाद सुलझाये एवं दोषियों को दंडित भी किया।

बहुरूपिये अपनी काल का आविर्भाव महाभारत काल से मानते हैं। बताया जाता है कि वे बावन प्रकार के छद्मवेश धारण कर सकते हैं। बहुरूपियों की कला अब धीरे–धीरे समाप्त हो रही है। अर्थात् इस लोककला को आगे बढ़ाने वाले लोग कम ही सामने आ रहे हैं। इस कला के माध्यम से जीविका चलाने में हो रही परेशानी के कारण नयी पीढ़ी के लोग इसमें रुचि नहीं ले रहे।

आलेख

सामाजिक संचेतना के संवाहक–बख्शीजी

डॉ. श्रीनलिनी श्रीवास्तव 'शिवायन'
भिलाई, मध्यप्रदेश 490001
मो. 9752606036

बख्शी जी एक विशेष अध्ययनशील पाठक थे। आप हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, मराठी एवं बंगला साहित्य के प्रसिद्ध एवं उत्कृष्ट उपन्यासों का विशेष रूप से अध्ययन करते रहते थे। आप अक्सर कहा करते थे–जिस साहित्य को पढ़ने में आनंद की अनुभूति होती है, उसी साहित्य को मैं बार–बार पढ़ता हूँ। उन्होंने अपने निबंध में लिखा है–बचपन में मैं देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकांता संतति' उपन्यास का एक अद्‌भुत पाठक था। उसे पढ़ते हुए भूख–प्यास, स्कूल जाना सब कुछ भूल जाता था। बंकिम बाबू के 'आनंद मठ' के संबंध में आज की युवा पीढ़ी यह विश्वास नहीं कर पाएगी कि मैंने उस उपन्यास को न जाने कितनी बार पढ़ चुका हूँ। उपन्यास के नायक जीवानंद की चर्चा करने पर उसके सामाजिक तत्कालीन देशभक्ति की समर्पित भावना का ऐसा सजीव जीवंत चित्रण कर देते थे कि उसे सुनकर कोई भी व्यक्ति अपने आपको सच्चा देशभक्त होने के लिए जागरुक हो जाता था। साहित्य का अध्ययन करते हुए बख्शीजी अनवरत चिंतन–मनन करते हुए लिखने का भी प्रयास करते। घर का वातावरण तो साहित्यिक था ही। उनके पिताश्री और प्रपितामह श्रीउमराव बख्शी जी साहित्य में अभिरुचि रखते थे और कहानियाँ, कविता लिखते रहते थे। उमराव बख्शी की 'जानकी पंचाशिका' बंबई के वेलडियर प्रेस से प्रकाशित हुई थी। बख्शी जी ने मॉडर्न रिव्यू की फेट कहानी का अनुवाद कर सारणी नाम से 1911 में हितकारिणी पत्रिका में प्रकाशित हुई। 1913 में सोना निकालनेवाली चींटियाँ प्रकाशित हुई। वह युग अनुवादों का युग था। 1916 में सिस्टर वीट्रिस के मेलटिंग का अनुवाद प्रायश्चित नाम से लिखा वह भी प्रकाशित हो गयी। इससे उत्साहित होकर वे प्रतिदिन लिखने लगे। 1916 में सरस्वती में बख्शी जी की झलमला कहानी प्रकाशित हुई।

बख्शी जी को पढ़ने–पढ़ाने और लिखने–लिखाने में विशेष अभिरुचि थी। इसलिए स्कूल में पढ़ते थे। तब भी अपने से छोटे कक्षा के बच्चों को उनकी समस्याओं का निराकरण करते हुए उन्हें पढाते रहते थे। अपने साहित्यिक जीवन के प्रारंभिक काल में वे कविताओं का लिखना विशेष रूप से प्रारंभ किये थे। जो अश्रुदल और शतदल के नाम से प्रसिद्ध है। उनकी अश्रुदल जैसी काव्य संग्रह हिन्दी साहित्य जगत का प्रथम शोक काव्य है। इसमें बख्शीजी ने राजकुमार दिलीप सिंह की अचानक दुर्घटना में मृत्यु हो जाने से उसकी पत्नी की विरह व्यथा कथा है जो बहुत ही सरल, सहज और वस्तु शिल्प की दृष्टि से असाधारण काव्य संग्रह है।

बख्शी जी सर्वप्रथम स्टेट हाई स्कूल 1916 में संस्कृत के शिक्षक बने उस समय शारदा पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर आपकी मातृमूर्ति कविता प्रकाशित हुई। फिर खैरागढ़ के विक्टोरिया हाई स्कूल में 1925 में आप अंग्रेजी के शिक्षक हुए। 1959 में आप राजनादगाँव के दिग्विजय कॉलेज में हिन्दी के प्रोफेसर बने। इस बीच आप कुछ समय के कांकेर में भी शिक्षक बने।

बख्शी जी जीवन पर्यन्त मास्टर ही बने रहना चाहते थे। इसीलिए उन्होंने एक ललित निबंध भी लिखा है। अगले जन्म में मास्टर बनूँ। बख्शी जी ने जिन छात्र–छात्राओं को पढ़ाया। उनके बच्चों को भी पढ़ाया। जीवन की आखिरी पड़ाव में उनके पोते–पोतियों को भी पढ़ाया। उनको पढ़ाने से बख्शी जी के हृदय में एक विशिष्ट ऊर्जा मिलती थी और वे वृद्धावस्था की शिथिलता को भूल जाते थे।

खैरागढ़ के कितने ही जैन परिवार की लड़कियाँ तीसरी, चौथी तक पढ़कर पढ़ाई छोड़ दी थी। उन्हें भी बख्शी जी पढ़ाते थे और उन्हें छोटे–छोटे कहानी संग्रह पढ़ने के लिए दिया करते थे। उन्हें लिखने के लिए प्रेरित करते थे। अपने विचारों को आप प्रतिदिन लिखने का प्रयास करो। लिखना लिखने सिखाता है।

खैरागढ़ की एक ब्राह्मण औरत जिसका नाम था अम्बिका, वह अपने पति से बहुत परेशान रहती थी। क्योंकि उसका पति शराबी और जुआड़ी था। वह अम्बिका बख्शीजी के घर में पापड़, बड़ी बनाने के लिए आ जाती थी। तो उसे कुछ रुपये मिल जाता था। बख्शी जी ने समझाया कि यदि तुम आठवीं पास कर लेती तो तुम्हें कहीं–न–कहीं नौकरी मिल जाएगी। वह अंबिका निराश होकर कहती है, अब भला मैं कहाँ स्कूल जाकर पढ़ाई करूँगी। तब बख्शीजी ने कहा–तुम यहीं प्रतिदिन तीन बजे के करीब आओ, तुम्हें एक घंटा रोज पढ़ाऊँगा। वह अम्बिका मन लगाकर पढ़ने लगी। तीन चार वर्षों में ही वह आठवीं कक्षा के लायक पढ़ाई कर ली। खैरागढ़ के स्कूल से वह आठवीं पास हो गयी और उसे ग्रामसेविका की नौकरी भी मिल गयी। इससे वह अत्यधिक खुश होकर अपनी शिक्षा का भरपूर लाभ उठायी और अपने बच्चे लड़के व लड़कियों को पढ़ाई में विशेष ध्यान देने लगीं। इस प्रकार जो लोगों को साक्षर करने और उनके जीवन में सुख–शान्ति लाने के लिए एक प्रकार से सामाजिक क्रांति का बहुत ही सुंदर प्रयास किया उसमें उन्हें सफलता भी मिली। खैरागढ़ में रहकर राजकुमारी शारदा देवी और उषा देवी को भी पढ़ाते थे। पढ़ाते–पढ़ाते उन्हें भी लिखने के लिए प्रेरित करते थे।राजकुमारी उषा देवी जब यूरोप यात्रा में गयी तब बख्शीजी ने उन्हें कहा कि आप प्रतिदिन डायरी जरूर लिखिएगा। जब वे लौटकर आयी तब अपनी यूरोप यात्रा की डायरी बख्शी जी को दिखलाई। उस समय मैं कॉलेज में पढ़ रही थी। राजकुमारीजी की यूरोप यात्रा की डायरी मैंने पढ़ी है। राजकुमारी उषा देवीजी ने 'प्रतीक्षा' नाम से एक उपन्यास भी लिखी है। मैंने उस उपन्यास को भी पढ़ा है। इस प्रकार बख्शीजी को लिखने लिखाने और पढ़ने–पढ़ाने में विशेष रुचि थी, जो जीवन पर्यन्त बनी रही।

बख्शीजी के व्यक्तित्व की एक विशेषता यह भी है–एक दिन शाम को बख्शीजी घूमने निकले तो स्कूल के चपरासी सहदेव को उन्होंने देखा। वह ठंढ से काँपते हुए जल्दी–जल्दी जा रहा था। उसे रोककर बख्शी जी ने अपना ओढ़ा हुआ साल उसे दे दिया। घर में काम वाली रौताईन फगनी नहीं आती थी, तो बख्शीजी लोगों से पूछते हुए उसके घर पहुँच जाते थे और उसे बीमार देखकर कुछ रुपये देकर उसे कहते थे–जल्दी से ठीक हो जाओ, फिर काम पर आ जाना। घर में तुम्हारे नहीं आने से तकलीफ हो रही है। इस प्रकार उनके स्वभाव की सहजता का एक पक्ष यह भी है। वे अपने को कभी बहुत बड़ा नहीं समझते थे। मानवीय गुणों से उनका हृदय सैदव आप्लावित रहता था। तभी तो एक बार जब दसवीं कक्षा की मैं छात्रा थी, तब ओवित की परीक्षा में उत्तीर्ण हुई थी। उस समय स्टेट हाई स्कूल में उन्हें मुख्य अतिथि के रूप में बुलाया गया था। तब पहली बार मैं उनके हाथों से अपना प्रमाण–पत्र लिया था। उस दिन मैंने घर में आकर कहा–आप तो बड़े आदमी हैं, मेरी ऑटोग्राफ कॉपी में आप कुछ लिख दें।

देख मेरा मान, तुम तो बड़ी समझती हो मैं बड़ा हूँ।
क्या लिखूँ आज कितनी बड़ी चिंता में पड़ा हूँ।

इस प्रकार बख्शीजी को मास्टरजी कहलाने में विशेष खुशी होती थी और वे सभी से मास्टरजी कहलाना पसंद करते थे। मेरा यह सौभाग्य था कि मैं पहली कक्षा से बी.एड. की कक्षा तक अंग्रेजी हिन्दी और संस्कृत पढ़ती आई।

बख्शीजी ने छत्तीसगढ़ की आत्मा में एक साधारण काम करनेवाली रौताईन कारी का चित्रण इतना सुंदर ढंग से लिखा है कि वह कारी समस्त नारी जाति का प्रतिनिधित्व करनेवाली असाधारण प्रतिभा की प्रस्तुतीकरण करती

है। उस कारी का चित्रण करते हुए बख्शीजी शशि तिवारी की कहानी 'नाम मोर फुलवा मैं तो धोबिन हूँ नवाब की' और महादेवी वर्मा की कहानी 'लक्ष्मी' से तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में नारी चरित्र का सुंदर विश्लेषण किया है। उन्होंने उस कारी नारी की चरित्र की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि स्नेह की सेवा, स्वामिभक्त की दृढ़ता, विश्वास की सरलता, वचन की गौरवरक्षा और ममत्व का अधिकार इसी में तो छत्तीसगढ़ की आत्मा है। कारी एक साधारण नारी होकर अपनी असाधारण शक्ति का परिचय देती है। बख्शीजी के व्यक्तित्व के और उनके अध्ययनशीलता के बारे में उनके मित्र रामानुज लाल श्रीवास्तव जी ने यह लिखा कि–

और तो हमने कुछ नहीं जाना, लेकिन लिखना जान गये।
लिखते जागे लिखते सोए, लिखते–लिखते प्राण गये।

बख्शीजी का संपूर्ण साहित्य वैयक्तिक चेतना की जागृति एवं हृदय के अनुभूत भावों की अभिव्यक्ति उनकी रचनाओं में जीवंत रूप में दिखलाई देती है। यह साहित्य साधना के अविराम प्रयास का प्रतिफल है।

साहित्य वही श्रेष्ठ होता है, जिसमें सृजनकर्ता के जीवन दर्शन संबंधी अटूट आत्मविश्वास की अप्रतिम धारा प्रवाहित होती है। ऐसे साहित्य में शब्दों का मूल्य नहीं होता। शब्दों के भीतर छिपे हुए अर्थपूर्ण भावों का मूल्य सर्वोपरि होता है। बख्शीजी के निबंधों में स्टीमेंशन सोमरसेट मॉम, ए.जी. गार्डनर और मानटेन शैली का विशेष प्रभाव दिखाई देता है। बख्शीजी जीवन की छोटी–बड़ी घटनाओं के प्रसंग से अतीत की स्मृति का ऐसी सुंदर यादों को जोड़कर कहानी की संरचना करते हैं। उनकी गुड़िया कहानी में जो हमारी लोक संस्कृति एवं पारंपरिक तीज त्याहारों में 'अक्ती' के समय छोटे–छोटे बच्चों के द्वारा गुड्डे–गुड़ियों के व्याह रचाने का पारंपरिक उत्सव मंगल होता है। बचपन में देखे हुए उस अक्ती की याद बुढ़ापे में फिर से उस त्योहार में शामिल होना अतीत और वर्तमान की यादों की शृंखला में अपने लोक संस्कृति की महत्ता को सजीवता के साथ प्रस्तुत करते हैं। इतना ही नहीं, अपने अध्ययनशीलता के कारण उन्हें राबिन्सन कुर्शो की ही याद नहीं आती है। जबकि जंगल में भटकते हुए 'चंद्रकांता संतति' का पात्र भैरवसिंग की गुलेल भी याद आती है। अपनी कहानी में वे भी छत्तीसगढ़ की महानदी के बीच के टापू में पहुँच जाते हैं। तब उन्हें नाव के भटक जाने के कारण उन्हें रवीन्द्रनाथ की नौका डूबी भी याद आ जाती है। छत्तीसगढ़ में जो हलषष्ठी का त्योहार मनाया जाता है। उसकी याद करते हुए उनकी कहानी की नायिका ललिता नदी के किनारे उगे हुए पत्तों को तोड़कर धान की बालियों को खोज–खोजकर कूट–कूटकर चावल बनाती है। और भूख की शांति की लिए भात और भाजी तैयार करती है, तब लेखक को यह सहज ही ज्ञात होता है कि वास्तव में आवश्यकता ही आविष्कारों की जननी है।

इस प्रकार कितनी ही बातों की छोटी–छोटी बातों को लेकर उन्होंने साहित्य को विशेष रूप से समृद्ध किया है और रेणुजी के 'मैला आंचल' की तुलना कितने ही परिवारों में सौतले माँ और बेटे–बहुओं के झगड़ों का बहुत ही अच्छे तरीके से लिखा, तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य में चित्रण करते हैं। वाल्ट हिट मैन ने अपनी रचना के संबंध में लिखा है–कामरेड दिस इज नो बुक, हू दिस ए। बंधुवर यह ग्रंथ नहीं, जो इसे छूता है, वह एक मनुष्य को छूता है। वल्टहिट मैन का यह कथन सभी कवि साहित्यकारों के लिए है। जो सृजन करता है, उसमें उनकी आत्मा निवास करती है।

बख्शीजी के साहित्य में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति भी वे अपना उदार दृष्टिकोण रखते हैं, उनके निबंधों को हम कथात्मक निबंधों का पथ कह सकते हैं। जो स्वातंत्र्योत्तर पथ निदेशक कह सकते हैं।

बख्शीजी के निबंधों में जीवन के छोटी–बड़ी अनेक घटनाओं के प्रसंग अतीत की स्मृति का सरस लेखा–जोखा करते हैं। उनके व्यक्तित्व की आभा, उनके गहन अध्ययन के परिणाम स्वरूप, उनके निबंधों में निश्छल भाव की निष्कपट अभिव्यक्ति में हिन्दी साहित्य की गौरवमयी साहित्यसर्जक के रूप में आप परिलक्षित होते हैं। विधवा समस्या, गृहजीवन में असंतोष, समाज सेवा आदि आपके निबंधों में जीवन्त रूप में दिखाई देते हैं। बख्शीजी विषय और शिल्प की दृष्टि से आधुनिकता को लिये हुए है। परंपरा का भी निर्वाह करते हैं और मानव जीवन की सहज संवेदनाओं के निकट हैं।

आपके निबंध कालजयी भी इसलिए है, क्योंकि अभी तक हिन्दी साहित्य में इन विषयों पर इस प्रकार की ऊर्जा व आत्मीयता से युक्त रचनाएँ देखने को नहीं मिलती है। आपके निबंध सांस्कृतिक दार्शनिक दृष्टिकोणों को भी प्रतिबिम्बित करते हैं।

एक कुशल कहानीकार, चिंतक व समाजवेत्ता में अंतर होता है, लेकिन एक कहानीकार समाजविज्ञानी, समाजशास्त्री तथा जीवन के बारे में सकारात्मक सोच रखनेवाले की परिधि में सर्वश्रेष्ठ होता है। वैचारिक प्रतिबद्धता सिर्फ एक जिद्द है कहानी का परिश्रमशील सकारात्मक दृष्टि व्यक्ति में ही लिखने की प्रवृत्ति होती है। यह सामाजिक जीवन में ऐसे बुनियादी तौर पर स्वाभाविक रूप से लेखक अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों के हृदय में जनजागृति ला देता है। यह जागृत ही लेखक की लेखनी का सारतत्व होता है। प्रत्येक कहानीकार यह चाहता, यदि एक व्यक्ति भी उसकी कहानी को पढ़कर वाह कहता है या उसे जीवन का एक नया दृष्टिकोण दिखाई देता है तो लेखक का परिश्रम सार्थक हो जाता है।

इस प्रकार बख्शी साहित्य को पढ़ने से सहज ही विश्व साहित्य का ज्ञान हो जाता है।

कविताएं

मधुकर वनमाली,
मुजफ्फरपुर, (बिहार)
मो–7903958085

कोरोना और मतदान

इधर कोरोना का भय फैला
और निकलती जाती जान
उधर कहीं पे रैली होती
सबसे जरूरी जो मतदान

चुनकर जो संसद में जाते
नहीं जानते संविधान
चोर उचक्के ठग दस्यु सब
लूट हमें बनते धनवान

मूल्य नहीं मानव जीवन का
मत का केवल मिलता दाम
वोट की खातिर नेता बोले
बड़े जोर से जय श्रीराम

झूठे जुमलों में बहलाया
अब तो बन बैठे भगवान
भेड़ हुई भारत की जनता
करें भेड़िए अब जलपान।

नेतलाल यादव
चरघरा नावाडीह, जमुआ,
गिरिडीह (झारखंड)

साजन के साथ जा रही थी

साजन के साथ जा रही थी
लाल चुनरिया परिधान में
गजब ढा रही थी
जैसे प्रभात की किरण
अंतस के तम को भगा रही थी
अपने गोरे–गोरे गाल पर
लटका के एक दो बाल
आँख मिलाई, हल्की मुस्कुराई
नयनों से कर ली बात वो
साजन के साथ जा रही थी

चेहरे पर खुशी की रंगत
खूब छा रही थी
लाली बिन्दिया बहुत भा रही थी
उसकी विदाई पर कोकिल कंठ से
महिलाएँ गीत गा रही थीं
झुककर कदमों पे बुजुर्गों से
वो आशीर्वाद ले रही थी
दुआओं में उठ रहे थे हाथ
वो साजन के साथ जा रही थी...।

जीवनी साहित्य

आजादी की बलिवेदी पर नासिक की तेजस्विनी शलाकाएँ

डॉ. विद्याकेशव चिटको
अक्षर सोसायटी समर्थनगर
नासिक–422005
मो.–9527313387

ब्रह्मांड पुराण में पाँच मूल तीर्थ स्थानों का उल्लेख है, उनमें नासिक का नाम सर्वप्रथम है। श्लोक इस प्रकार है–

नासिकं च प्रयागं च नैमिषं पुष्करमं तथा
पंच मंच गया क्षेत्र षष्ठं क्षेत्र न विद्यते।

इसी प्रकार पद्मपुराण में –

कृते तू पद्म नगरं त्रेतायां तु निकंटम्।
द्वापरे तु जन स्थान कलौ नासिक मुच्यते।।

कृतयुग में ब्रह्मा ने पद्मासन में तपस्या की थी। इस कारण इस स्थान को पद्मनगर कहा गया है। नासिक का एक नाम सुंदरपुर है। इक्ष्वाकु वंश के पुत्र दंड दंडक राजा के साम्राज्य का यह एक छोटा सा गाँव। अत्यन्त रमणीय, हरित वन–लता–वल्लरियों से आच्छादित। इस रम्य परिसर में भार्गव ऋषि का आश्रम था। भार्गव ऋषि कन्या का दंड राजा ने विनय भंग किया। अतः क्रोधित भार्गव ऋषि ने राजा को दंड का शाप दिया कि तेरे राज्य का नाश हो जाएगा। इसी शाप के कारण राज्य में ऐसी आंधी बवंडर तूफान आया कि सुंदरपुरी नष्ट हो गयी। खड़ी फसल बर्बाद हो गयी। राज का सर्व वैभव खत्म हो गया, भीषण अकाल पड़ा। सर्वत्र त्राहि–त्राहि मच गयी। प्रजा ने लोकमाता पार्वती की आराधना की। पार्वती ने दृष्टान्त दिया और उसी की कृपा एवं दयादृष्टि से सुंदरपुर को गत वैभव प्राप्त हुआ। इसी को दंडकारण्य कहा जाने लगा। खर, दूषण और त्रिशिर राक्षस इसी अरण्य में तपस्यारत ऋषि–मुनियों का तप भंग करते थे। प्रभु राम ने इन राक्षसों का नाश किया, जनसमूह निर्विघ्न जीवनयापन करने लगा। इसका नाम जनस्थान हुआ। इसी जनस्थान नाम से नासिक के श्रेष्ठ मराठी साहित्यकार ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत वि.वा.शिरवाडकर कुसुमाग्रज ने जनस्थान पुरस्कार शुरू किया है। इसी स्थान पर लक्ष्मण ने सूर्पनखा के नाक–कान काटकर उसे विद्रूप कर दिया था। इसीलिए इसे नासिक्य कहा जाने लगा। कालांतर में यही नासिक हुआ। आज सर्वत्र यह नगरी नासिक नाम से संबोधित है। शिव और विष्णु का यहाँ निवास होने के कारण यह हरिहरक्षेत्र भी कहलाता है। गोदावरी नदी यहाँ दक्षिणवाहिनी है, अतः इसे रामतीर्थ नाम से भी पहचाना जाता है। प्रति 12 वर्ष पर सिंहस्थ कुंभ पर पूरे भारत और विश्व से सनातनी साधु–संत–महात्मा, योगी, तपी, व्रती लाखों श्रद्धालु स्नान हेतु आते और पुण्यलाभ की कामना करते हैं। ऐसी नासिक भूमि देवभूमि, मंत्रभूमि, कर्मभूमि, धर्मभूमि, तपोभूमि योद्धाओं की शौर्यभूमि रामभूमि के नाम से पहचानी जाती है। 18वीं शती के द्वितीय चरण में ब्रिटिश राजसत्ता ने धूर्ततापूर्वक इस भूमि पर अपना कब्जा कर लिया। प्रथम स्वतंत्रता समर ने ब्रिटिश राजसत्ता को समूल नष्ट करने का पूरे भारत ने आजादी की कीमत पहचानी थी, पूरा हिन्दुस्तान इसके लिए कटिबद्ध हुआ। महारानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, नाना पेशवे, अग्रक्रम में थे। सन् 1857 से 1947 तक आजादी की लड़ाई का इतिहास हुतात्माओं के आत्मबलिदान का साहसी, निर्भय शूरवीरों की बलिदान–गाथा का इतिहास है। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में तो महारानी लक्ष्मीबाई ने वीरता का कीर्तिमान स्थापित कर दिया था। सत्ताधारी ब्रिटिश शासन इस वीरांगना। रणरागिनी के अतुलनीय शौर्य, पराक्रम, साहस, रण चातुर्य से स्तंभित थे। ब्रिटिश इतिहासकारों ने इस मर्दानी पराक्रमी को भारत की जॉन आफ आर्क संबोधित किया है। स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी गौरीशंकर की ऊँचाई लिये हुए है। इतिहासकार यदुनाथ सिंह ने लिखा है–राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास, भारत की महिलाओं का त्याग। निर्भयता, सहनशीलता, पराक्रम और सेवाभाव का उल्लेख किये बिना पूर्ण हो नहीं सकता।

रियाज अहमद देहलवी ने लिखा कि भारत के स्वतंत्रता में महिलाओं का उल्लेखनीय भाग है। राष्ट्रीय संघर्ष की गाथा उस समय तक अपूर्ण रहेगी, जबतक सब्जपोश खातून की वीरता रानी गंडाली की शूरता, जीनत अमीन की दूरदर्शिता, रानी लक्ष्मीबाई और उनकी सेना की मुंदरी, सुंदरी, झलकारी के निर्भीक साहस, पराक्रम, शौर्य; आमत असलम के स्वाभिमान और असगरी बेगम के त्याग का उल्लेख न हो।

'माताभूमिः पुत्रोऽहम्' भूमि हमारी माता है। हम पृथ्वी के पुत्र हैं, राष्ट्र के आन–बान–शान के लिए सर्वस्व समर्पित करते वीर पुरुषों का बहादुरी कर्तव्यनिष्ठा हमारे शूरवीरों के बलिदान का इतिहास है। कर्तव्यपथ पर आरूढ़ अपने पथ पर बिछे शत सहस्र काँटों को चुन–चुनकर अपनी राह को सुगम बनाते आँधी हो या तूफान अंधड़, मूसलाधार वृष्टि हो, घनी अंधकारमय भयावह रात्रि हो या सूर्य की प्रखर किरणों से धरती झुलस रही हो, पराक्रमी वीर मर्दों ने अपने सुखों की होली कर दी और 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरियसी' की रक्षा की है।

स्वतंत्रता संग्राम में नासिक की महिलाओं की भागीदारी अनोखी, विलक्षण है। अपने खाते–पीते सुखी, समृद्ध, सम्पन्न परिवार के सुखों की होली जलाकर अपने पति के कर्तव्यों को ही अपने जीवन का अंतिम ध्येय माननेवाली गणेश दामोदर सावरकर की पत्नी येसुबाई और क्रांति वीर विनायक दामोदर सावरकर की पत्नी यमुनाबाई वंद्य है, जिनके त्याग, तप, सेवा, देशप्रेम इतिहास के पृष्ठों में स्वर्णाक्षरों में लिखा गया है। ये महिलाएँ साक्षात् गौरी, पार्वती, दुर्गा, भवानी, जगदम्बा वंद्य है। येसुबाई सावरकर का जन्म प्रसिद्ध 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक त्र्यंबेश्वर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। कन्या का नाम सरस्वती। ग्यारह वर्ष की अवस्था में उनका विवाह भगूर के वतनदान गणेश दामोदर के साथ सम्पन्न हुआ। उस जमाने की प्रथा अनुसार लड़की को पढ़ाना–लिखाना जरूरी नहीं था। अक्षर ज्ञान ही पर्याप्त था। सावरकर परिवार समृद्ध था। इस परिवार में सभी उन्हें येसु भाभी कहते थे। गणेश दामोदर सावरकर को घर में सब बाबा राव कहते थे। बाबा सावरकर नासिक में पढ़ रहे थे और येसुबाई घर गृहस्थी में जुटी हुई थी। सन् 1898 में नासिक को प्लेग की महामारी ने जकड़ लिया था। उस महामारी में सावरकर परिवार के दो बुजुर्ग कमाते व्यक्ति स्वर्ग सिधार गये। वतनदारी तो थी, पर खेत–खलिहान को देखने संभालनेवाला कोई नहीं था। विनायक और नारायण दोनों बच्चे बहुत छोटे थे, स्कूल में थे, उनकी पढ़ाई के लिए और घरखर्चे के लिए पैसा खड़ा करना था। नित्य के उदरभरण की व्यवस्था करना कठिन हो गया था। उस समय घर की चांदी के बर्तन और गहने गिरवी रखे जाने लगे। साहूकार के घर भेजे जाने लगे। सन् 1906–1909 के बीच बाबा सावरकर ने नौ पुस्तकें प्रकाशित की थी। क्रांतिकारी विचार पुस्तिकाओं के प्रकाशन के लिए येसु बाई के गहने क्रम से सराफ साहूकार की तिजोरी का धन बनने लगे थे। जब अंतिम जेवर उनके नाक की नथनि सराफ की दुकान में जाने लगी, तब येसुबाई पहली बार फफककर रो पड़ीं। कारण वह उनके माताजी की एकमात्र निशानी थी। येसुबाई पति बाबा राव के क्रांतिकारी विचारों के समर्थक थी। नासिक में बाबा राव के प्रयत्नों से मित्रमेला नामक संस्था की स्थापना हुई थी। इसी संस्था को आगे चलकर अभिनव भारत नाम मिला। यह संस्था आज भी नासिक की शान है। आजादी के लिए आत्मसमर्पण करते वीर जवानों के बलिदान का इतिहास सर्वत्र यहाँ संगृहीत है। देश, विदेश, जर्मनी, फ्रांस के इतिहास संशोधक यहाँ

आते हैं।

बाबा राव ने राज्यद्रोही करार कर इन्हें काले पानी की सजा देकर अंडमान रवाना कर दिया, जिससे येसुबाई का जीवन अंधकारमय हो गया। परिवार को तो संभालना था। दो बच्चियाँ थीं, उनको बड़ा करना था। दोनों बच्चियाँ सब समय बीमार रहती थीं। दवा–दारू करने पर भी उन दोनों बच्चियों को बचाया नहीं जा सका। पति कालापानी सजा भुगत रहे थे। घर में पैसा आने के सभी जरिए बंद हो गये थे। गोद सूनी हो गयी थी। ब्रिटिश सत्ताधारियों द्वारा बार–बार घर की कुर्की होती थी। पुलिस घर में घुसकर तलाशी लेते। सारा सामान अस्त–व्यस्त बिखराकर जो कुछ भी उनके उपयोग की वस्तु होती, लूटकर ले जाते थे। बिखरे सामान को बटोरती और आँसू बहाती येसुबाई उस समय सिर्फ 23 साल की थी। संकट की स्थिति में अपने जन भी पराये हो जाते हैं। येसुबाई किसी के घर जाती तो उनके लिए घर के दरवाजे बंद मिलते। घर की महिलाएँ खिड़की का एक पल्ला खोलकर देखती और बंद कर देती। इनके कारण घर पर कोई मुसीबत न आ पड़े। इस प्रकार का रूखा नीरस व्यवहार उन्हें बहुत खलता था, पर येसुबाई अपने व्रत पर अड़ी रही। एकला चलो रे व्रत। सन् 1905 में येसुबाई ने स्वदेशी का व्रत ले लिया था। जीवन के अंतिम क्षण तक वह इसका निर्वाह करती रही। स्वदेशी वस्तु, स्वदेशी कपड़ा, स्वदेशी चीनी, स्वेदेशी चूड़ी। महाराष्ट्र में सधवा स्त्री हाथ में कांच की चूड़ियाँ पहनती है। यह काँच उस समय विदेश से आता था। स्वदेशी का व्रत लिए हुए इस महिला ने कांच की चूड़ियाँ पहनना छोड़ दिया। सधवा अपनी कलाई सूनी नहीं रखती, धागे में काले मणि पिरोकर उन्होंने अपने हाथों को सजा रखा था। जीवन के अंतिम क्षणों में जब वह बिस्तर पर थी, कलाई सूज गई थी। उस समय दोनों हाथों में पड़ी वह काले मणियों के दाने के धागे को काटना पड़ा था। यह त्याग था, व्रत था। भारत देश के लिए अपने व्रत पर अटल बने रहना। नासिक में येसुबाई ने आत्मनिष्ठ युवती संघ की स्थापना की। राजद्रोह के अभियोग में पकड़े गये बाबा सावरकर के हाथ–पैरों में बेड़ियाँ डालकर शहर की गलियों में उन्हें घुमाया गया था। ब्रिटिश राज्यसत्ता का विरोध करते व्यक्ति की यह सजा थी। राजद्रोही की पत्नी। यदि वह पास से गुजरती तो महिलाएँ ताने मारतीं। उन्हें वक्रदृष्टि से देखती थी। ऐसी स्थिति में भी येसुबाई महिलाओं को संगठित कर राष्ट्रभक्ति का भाव जगाती। महिलाओं को एकत्र कर उन्हें अखबार में आए समाचार वीरों के त्याग, साहसी महारानी लक्ष्मीबाई, दुर्गाबाई, तारामती के सत्यव्रत की कथा सुनाती। राष्ट्रप्रेम जगा रहा थी, स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता के भाव जगाने का काम कर रही थी। येसुबाई का गला मधुर था। शास्त्रीय संगीत रागदारी तो नहीं जानती थी, पर जो भी गीत गाती उनमें अद्‌भुत मिठास थी। राष्ट्रप्रेम, भारतमाता की सेवा–भक्ति के अनेक गीत कविताएँ, पोवाडे सीता की पति परायणता राम वनवास प्रसंग के गीत उन्हें कंठस्थ थे...महिलाओं को सुनाती थी, राष्ट्रप्रेम की वह्नि सुलगा रही थी। महिला जागरण और राष्ट्रीय विचार देश के लिए त्याग समर्पण निष्ठा जगाती येसुबाई के पैरों में चप्पल नहीं थी। धूप में कंकरीली, कच्ची कीचड़ सनी राह सिर्फ अपने लक्ष्य पर निरंतर बढ़ती रही। अद्‌भुत विलक्षण था यह। अंतिम क्षण में उनकी सिर्फ एक ही इच्छा थी–पति दर्शन की। अपने प्रयास करने पर भी गोरे सरकार ने अनुमति नहीं दी। उसके कानों पर जू नहीं रेंगी। अंतिम दर्शन की इच्छा को लेकर वह स्वर्ग सिधार गई। उनके निधन के पूरे एक हफ्ते बाद उन्हें पति से मिलने की सरकारी अनुमति पत्र प्राप्त हुआ था। 'का बरखा जब कृषि सुखाने।' विनायक दामोदर सावरकर ने अपनी श्रद्धालु भाभी के प्रति सान्त्वना नाम से कविता लिखी है, जिसमें वे कहते हैं–मेरी भाभी यानी धैर्य की साक्षात् मूर्तिमंत प्रतिमा। वह मेरी जीवन की स्फूर्ति।

यमुनाबाई सावरकर अपनी जेठानी को आदर्श मानकर जीवनभर संघर्ष पथ पर चलती रही। यमुनाबाई विनायक दामोदर सावरकर की पत्नी, जिसने अपनी जीवन समिधा स्वतंत्रता के हवनकुंड में अर्पित कर दी थी। त्र्यम्बकेश्वर से कुछ ही मील दूर के जवाहर संस्थान में 5 दिसम्बर, 88 को उनका जन्म हुआ था। पिता रामचंद्रन त्र्यम्बक चिपलूनकर ज्वाहर संस्थान में दीवान थे। घर में सम्पन्नता थी, पर अहंकार नहीं था। यमुना का विवाह सन् 1901 में एक गौरवर्ण हँसमुख मितभाषी, मधुरभाषी वाग्देवी के वरदपुत्र बुद्धिमान प्रतिभावान विनायक दामोदर के साथ बड़ी धूमधाम से सम्पन्न हुआ था। सावरकर परिवार में गृहलक्ष्मी का स्वागत हुआ। पर इस परिवार में उसे फूलों की शैय्या नहीं, काँटों की सेज मिली। विनायक दामोददर की विलक्षण बुद्धिमत्ता पर उनके ससुर रामचंद्र चिपलूनकर को बड़ा अभिमान था। उन्होंने विनायक को बैरिस्टरी पढ़ने के लिए इंग्लैंड भेजने का संपूर्ण खर्च करने का निर्णय किया। जगन्नाथ शंकरशेट छात्रवृत्ति लेकर विनायक इंग्लैंड चले गये और यमुनाबाई पति विरह में अपने डेढ़ साल के बच्चे प्रभाकर के साथ दिन गुजार रही थी। राजद्रोह करता यह परिवार जिसका साथ देने के लिए आगे आने की कोई हिम्मत नहीं करता था। उस परिवार में यमुनाबाई दिन काट रही थी, पर ईश्वर को वह मान्य नहीं था। छोटा सा बुखार बीमारी का कारण बना और पुत्र प्रभाकर की मृत्यु हो गयी। पुत्र निधन से यमुनाबाई का तर हो उठी पति का विरह और पुत्रशोक से व्यथित यमुनाबाई की नस–नस में राष्ट्रभक्ति प्रवाहित थी। पति अंडमान में जेल की सजा भुगत रहे थे और ब्रिटिश पुलिस भगूर में उनके पीछे पड़ी हुई थी। क्रांतिकारी विनायक दामोदर की पत्नी उससे और छिपी बातों का पता लग सकता है। इसलिए अंग्रेजी पुलिस समय–समय पर घर में घुसकर घर की तलाशी लिया करते थे। अदम्य साहस और धीरजवाली यह महिला थी। सभी संकटों का सामना करती रही। घर में कोई मर्द नहीं है। यह जानकर पुलिस समय–समय पर छापा डालती थी। एक बार पुलिस के छापा डालने की भनक यमुनाबाई को लग गयी थी। रात्रि का समय मूसलाधार बारिश हो रही थी। घना अंधकार रास्ते में दूर तक कहीं दीया–बत्ती टिमटिमाते दिये लाईट पोस्ट बत्ती नहीं। उस स्थिति में यमुनाबाई अकेली घोड़े पर सवार होकर नासिक के तिलभांडेश्वर गली में आयी। सरकार वाडा पुलिस चौकी उस स्थान पर यमुनाबाई के जेठजी बाबा सावरकर जेल में कैद थे। उनसे मिली। उन्होंने अपने परिवार के पीछे ब्रिटिश सरकार किस प्रकार हाथ धोकर पीछे पड़ गयी है, उनके द्वारा किये जाते अत्याचार पुलिस के दुष्टकर्मों का बखान उसने किया। यह थी एक साहसी, पराक्रमी राष्ट्र पर सर्वस्व समर्पित करती भारती माता की लाडली बेटी यमुनाबाई सावरकर। राष्ट्रभक्ति का भाव सर्वोपरि था। स्वदेशी वस्तु का अभिमान रखती यह राष्ट्राभिमानी स्त्री स्वदेशी कपड़ा, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार करती महिलाओं को जागृत करती थी। अपनी जेठानी येसुबाई की वह दाहिना हाथ थी। महिलाओं को जागृत करने, उनमें वैचारिकता का, स्वतंत्र चिंतन का राष्ट्रप्रेम, राष्ट्र सम्मान, राष्ट्र के लिए त्याग, समर्पण उन्होंने सिखाया। अदम्य साहस और बल से वह देशसेवा में कार्यरत रही। सावरकर को अंडमान से रत्नागिरि में स्थानबद्ध कर दिया गया। विनायक दामोदर सावरकर राष्ट्रसेवा कार्य में जुट गये थे। यमुनाबाई भी पूर्ण रूप से महिला उत्थान के काम में लग गयी। जातिभेद उन्मूलन, अस्पृश्यता निवारण, हरिजन महिलाओं का अक्षरज्ञान, स्वच्छता, आरोग्य आदि के पाठ पढ़ाने का महत्वपूर्ण कार्य यमुनाबाई सावरकर ने रत्नागिरि में किया। इस त्याग सेवा की मूर्ति के दर्शनार्थ महात्मा गाँधी और कस्तूरबा गाँधी रत्नागिरि गये थे। बा यमुनाबाई से मिलकर धन्य–धन्य हो गयी थी। सन् ..... में सावकरजी को रत्नागिरि से मुक्त कर दिया गया। वे मुंबई में रहने लगे थे। यहाँ महिलाओं के लिए उन्होंने जो कार्य किया है, वह अपने आपमें एक स्वतंत्र पुस्तक है। झोपड़पट्टी में रहती महिलाओं को साक्षर करना उपेक्षित, तिरस्कृत व दलित वंचित, परित्यक्ता, विधवा, अनाथ, अपंग, मुकबधिर महिलाओं के लिए कार्य करती कर्तव्य की वेदी पर आत्मसर्मपण करती यमुनाबाई सावरकर को शत–शत वंदन।

लक्ष्मीबाई दातार नासिक के प्रसिद्ध सुप्रतिष्ठित वैद्य वामन शास्त्री दातार की पत्नी तिलभांडेश्वर महादेव गली में दातार शास्त्री का पुश्तैनी मकान था। ब्रिटिश सरकार जब सावरकर परिवार के पीछे पड़ गई थी और

येसुबाई और यमुनाबाई को परिवार के निकट संबंधियों ने भी सहारा, आधार, आश्रम नहीं दिया था। उस समय विकट संकट की बेला में लक्ष्मीबाई ने माई सावरकर को अपने घर के जच्चा–बच्चा वाले कमरे में छिपा दिया था। पुलिस जब उनके दरवाजे पर आई तलाशी लेने के लिए तब लक्ष्मीबाई घर की देहरी पर दोनों पैर जमाकर खड़ी हो गयी। बोली–मेरी छाती पर पैर रखकर आगे बढ़ो। साक्षात् दुर्गा अवतार देख पुलिस पीछे मुड़ गयी। यह थी राष्ट्रभक्त लक्ष्मीबाई दातार। लार्ड कर्जन द्वारा किए गए बंगाल विभाजन से पूरा हिन्दुस्तान क्षुब्ध था। नासिक में महिलाएँ प्रभातफेरी निकालती थी। राष्ट्रप्रेम देशभक्ति गीत गाती भारत माता की जय,वंदे मातरम् का घनगर्जन स्वर आकाश में गुंजायमान था। आनंदमठ का सामूहिक पाठ करती माई गोपाल जोशी दबंग महिला उसे ब्रिटिश सरकार ने पकड़ लिया और जेल में डाल दिया। घर में छोटे–छोटे बच्चे–एक 5 साल का, एक 3 साल का और एक डेढ़ साल का था। घर में बच्चों के मुँह में डालने के लिए अन्न का एक दाना भी नहीं था। अंग्रेज पुलिस ने उन बच्चों के लिए 2 दिन का राशन माई गोपाल जोशी के सामने रख दिया। पर वह स्वाभिमानी देशभक्त महिला ने उसे उछाल दिया और बोली–इसे तू कुत्ते के लिए ले जा। जिद की पक्की थी, हार नहीं मानी, माफी नहीं माँगी। उसे महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता के गीत कंठस्थ थे। उसपर नृत्य करते गाती और अंग्रेज सिपाहियों की नकल उतारती थीं। यह एक साहसी महिला की गाथा है। बाल गंगाधर तिलक, आगरकर गोखले उनके आदर्श थे। कुसुमताई ओक उनके पति का छापाखाना था, जिसमें वह गुप्त वार्ता छापती। क्रांतिकारियों को संदेश एक जगह से दूसरी जगह रातोरात पहुँचा देने का काम करती थी, कभी पुलिस की पकड़ में नहीं आयी। आजादी की लड़ाई में हजारों महिलाओं ने भाग लिया था। घर, परिवार, बच्चे संयुक्त परिवार में सास, ससुर, विधवा ताई, चाची, बुआ, ननद सभी के प्रति अपने कर्तव्यों को पूरा करते हुए वीर सत्याग्रही भाइयों की प्राणपण से सेवा करती रही। क्रांतिकारियों के लिए भोजन बनाना, उन्हें समय पर ठीक जगह तक पहुँचना, उनके शुभसंदेश यथासमय स्थान पर यथासमय पर पहुँचाना, जो क्रांतिकारी जेल में बंद कर दिए गए हैं। उनके परिवार में जाकर उनकी पत्नियों को ढाढ़स बँधाना। उनके बच्चों की पढ़ाई के लिए पैसे सहायता देना, उनके कपड़ों की सिलाई करना, बच्ची यदि विवाहयोग्य है तो उसके लिए योग्य वर खोजना। विवाह के लिए पैसे का बंदोवस्त करना। किसी की बच्ची यदि सौरी के लिए मायके आई है तो उसकी सारी व्यवस्था करना, ऐसे हजार–हजार काम इन महिलाओं ने किये हैं। एक लंबी सूची है इनके त्याग, तप, सेवा, देशभक्ति, राष्ट्रनिष्ठा बेजोड़ है। इनके त्याग तप की गाथा का इतिहास नहीं लिखा गया है, पर इन महिलाओं ने, माँ बनकर , बहन बनकर सच्चाई से, पत्नी बनकर, वफादारी से और बेटी बनकर सेवाभाव से जो कार्य किया है, वह अद्‌भुत है और विलक्षण भी है। संजीवनी बाई खरे, गोदवरी बाई खरे, यमुनाबाई बालकृष्ण सीताबाई, वासुदेव राधाबाई देशपांडे, पारवतीबाई इंगले, कमलाबाई, जानोकर शांताबाई कुलकर्णी, वत्सलाबाई पोतनीस जैसी हजार हजार महिलाएँ। जिनपर हम गर्व करते हैं। हिराबाई शिंदे तो नासिक की भूषण हैं, जिन्हें रेडक्रॉस द्वारा कैंसर ए हिंद और रेडक्रॉस का स्वर्णपदक देकर सम्मानित किया गया। यह सम्मान इसके पहले फ्लोरेंस नाइटेंगल को क्वीन विक्टोरिया के हाथों प्रदान किया गया था। उसके बार पूरे सतहत्तर साल बाद इस सम्मान से विभूषित यह दूसरे क्रमांक की महिला है, जो भारत की शान है, भारत का सम्मान है, महाराष्ट्र की भूषण है और नासिक की गौरवपूर्ण अभिमान है।

पत्थर का स्पर्श यानी भूतकाल,फूलों का स्पर्श यानी वर्तमान और अग्नि का स्पर्श यानी भविष्यकाल। अग्नि का तेज,तप, कांति और चमक लिये आजादी की बलिवेदी पर सर्वस्व करती ये नासिक की तेजस्विनी शलाकाएँ हैं।

शिव बा की वीर जननी
काली कराल बनी झांसी की रानी
स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अग्निशिखा से जली
क्रांतिकारी की प्रेरणा तू
तेरे साथ ही जुड़ी है देश की नियति
शत सहस्र नमन करती मैं।

गज़लें

डॉ. रवीन्द्र 'रवि'
भागलपुर

हारे हैं जब भी दरमियाँ जयचन्द रहा है
घर के ही चिरागों से यारो! घर ये जला है

चोटी पे थे पर आज हम कदमों में पड़े हैं
खुद सोचिए कि किस तरह हमें वक्त छला है

ऐसे नहीं जलती है कभी सोने की लंका
है शोषितों का श्राप जो शोले में ढला है

हम खुद ही पालते रहे हैं आस्तीन में साँप
अब तक जो हैं बचे हुए मालिक की दया है

मट्ठा भी फूंक कर हैं पीते दूध के जले
हम हैं कि बार–बार ओठ अपना जला है

वो है तो इसी मुल्क का पला भी है यहीं
है बात क्या कि देश का दुश्मन वो बना है

निश्चित ही पालने में हुई होगी त्रुटियाँ
वर्ना कभी माँ–बाप को बेटा न छला है।

अब तो हर मोड़ पर रहते हैं सताने वाले
यार! मिलते हैं कहाँ प्यार जताने वाले

जिन्हें देखो वही बैठे हैं लुकाठी लेकर
लोग मिलते हैं कहाँ आग बुझाने वाले

गले मिलते हैं तो रखते हैं छुपाकर खंजर
हैं कहाँ लोग गले खुल के लगाने वाले

खा तो लेते हैं कसम प्यार निभाने के सभी
होते कितने हैं मगर साथ निभाने वाले

अब तो उल्फत भी लोग बेच रहे पैसों पे
मुफ्त में हैं भी कहाँ प्यार लुटाने वाले

इस कदर यारो! आदमी का हो गया है पतन
मिलते मुश्किल से हैं उसूल निभाने वाले।

जीवनी साहित्य

बहुआयामी भावना संसार के कवि मन्नालाल 'अमन्द'

धर्मेन्द्र कुशवाहा
बी.एच.यू, वाराणसी
मो. 9935297010

प्रथम कौस्तुभ वर्ष के बाद एक दशक आगे अपने शतकीय पारी की ओर अग्रसर कविवर श्रीमन्नालाल 'अमंद' जी में असीम ऊर्जा का स्रोत फूट पड़ा था, सघन हुआ था, प्रतिपल 'कुछ अपनी सब अपनों की' काव्य संग्रह का सृजन कर बैठे। यहाँ गीत, सबाई, ग़ज़ल, कविता की समकालीन उपस्थिति में असीम संभावनाओं का विस्तार देखने को मिलता है। इस भागती उम्र का इतना भावोवेदना में कोई कमी नहीं बरबस इसके नवीन परिवेश को पाकर और बलवती एवं तीव्र हुई थी। इससे लगता था कि जिजीविषा और सघन हुई थी, अन्वेषण की संभावना तीव्र हुई थी। कविकर्म को विस्तृत आयाम मिला था।

महाकाव्ययी प्रतिभा के धनी अमंद जी का काव्य संग्रह सात खंडों में विभक्त 230 गीतों में निरुद्ध रचना है। 'मौन सरगम' संग्रह की गीतात्मक पंक्तियाँ इसमें समाहित है। झण्डू बनारसी इनके अन्य उपनाम हैं, जहाँ खाँटी बनारसी (काशिका) भोजपुरी में भी हास्य–व्यंग्य शैली थी, कविताओं का संसार रचते थे।

प्राचीन हो या अर्वाचीन साहित्य की विद्यायनी शक्ति मोड़ लेती रही। साहित्य में सम्प्रेषणता का अन्वेषण सूक्ष्म भावाभिव्यक्ति जारी थी, जहाँ बिम्ब, प्रतीक प्रतिमान की जगह बनाया था, अपनी छाप छोड़ी थी–वहीं अनुपस्थिति, अवसान और लोप का प्रवेश हो गया था। समकालीनता के आवर्त में आयातित संवेदनाएँ जन्म ले चुकी थीं, नवगीत भी इसी कड़ी में जगह बना चुका था। इस सोच की कविताएँ घर वापसी की कविताएँ या गीत लगते थे। गाँवों के शहरीकरण में पीढ़ियों के बदलाव में इसके दर्द उमड़कर आते थे। आंचलिकता के साथ, भाषा में नविगुप्त तथा बिम्बों में नये प्रयोग इसके उपकरण थे। रति, प्रेम का आलोड़न भाषायी सौंदर्य में मिलता था। वहीं अमंद जी ने सारी विधाओं, सम्प्रेषणताओं को समेटकर नई सृष्टि और सृष्टि का सृजन किया था। अमंदजी ने सीमित में असीमित का संसार रचा था, जहाँ एक युग्म का सृजन होता था, गीत और गीतात्मक होते थे। विचार और विचारोत्तेजक हो जाते थे। ग़ज़ल और गीत मिलकर एकात्म हो जाते थे। एक चमत्कार देखने को मिलता था। मृत्यु और अमरता का दर्शन होता था। यहीं आकर कवि एकाकी हो जाता था। अपने व्यक्तित्व को निहारता तथा निखारता था। यह अमंद जी की सर्जना थी, कहीं से थोपा हुआ नहीं था, किसी के उधार लिया हुआ नहीं था।

इनके साहित्यिक जीवन में कई पड़ाव आये, इनके संग्रहों में दशकों का अंतर रहा। भाव नये पर गीत पुराने की परिपाटी का संयोजन मिलता था।

अमन्द की प्रारंभिक रचनाएँ हैं, जिनका वर्णन करना, न करना बराबर है। व्यावसायिक संलिप्तता में घर गृहस्थी, परिवार को संजोने में जो भी समय मिलता था, लिखते थे। 14 वर्ष की अल्पायु में पिता डॉ. लक्ष्मीनारायण कुशवाहा के देहान्त के उपरांत घर चलाने की जिम्मेदारी इनपर आ गयी थी। बड़ा परिवार था, प्रमुख यही थे।

उन दिनों वाराणसी से निकलनेवाले पत्र संसार सन्मार्ग, आज और गाण्डीव पर इनकी नजर बनी रहती थी। इनकी पैतृक दुकान नीचीबाग पर थी। 'तेंदूपात धूम्र दण्डिका' के व्यवसाय का संचालन करते थे। स्व. जयशंकर प्रसाद गुप्त की तरह चिंतनधारा में लीन रहा करते थे। 'सुंघनी साव' नाव की दुकान, जहाँ स्व. जयशंकर प्रसाद गुप्त बैठा करते थे–बनारस कोतवाली के पीछे गली में है। मन्नालाल अमंद की दुकान लंबे सड़क नीचीबाग में पोस्ट ऑफिस के समीप थी। यहीं से इनको कवि सम्मलेनों में जाने का अवसर मिलता था। स्व. महादेवी वर्मा, निराला, पंत, बच्चनजी की कविगोष्ठी में इनकी उपस्थिति नवागत कवियों में होती थी। साहित्य की समझ और इसकी धारा पकड़ में आ गयी थी। नागरी प्रचारिणी सभा, पराड़कर भवन निकट था, महाबोधि सोसाइटी आफ इंडिया से संचालित महाबोधि इंटर कॉलेज उस समय था और आज भी है। प्रिंसिपल थे स्व. धर्मरक्षित एम.ए. पालि भाषा के ज्ञाता, हिन्दी प्रेमी तथा साहित्यानुरागी। एक पत्रिका हिन्दी में ज्ञानमंडल, वाराणसी से मुद्रित होती थी, नाम था 'धर्मदूत', स्व. धर्मरक्षित एम.ए. इसके संपादक थे। धर्मदूत में भी श्रीमन्नालाल अमंद जी की कविता और कहानियाँ छपती थीं। अमंद साहित्यकारों की श्रेणी में आ गये थे। वहीं सारनाथ में स्व. सच्चिदानंद हीराचन्द वात्स्यायन अज्ञेय आते थे। भिक्खु धर्मरहित के मित्र थे। अमंद जी की प्रतिभा से प्रभावित थे। स्व. कुशवाहा कान्त द्वारा संपादित चिनगारी हिन्दी मासिक के अंकों में तथा इतिहास अंग में–आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा लिखित 'व्यंत्कामः' का अंश छपा था। हिन्दी ग़ज़ल के संस्थापक स्व. दुष्यंत कुमार त्यागी उस समय चिनगारी में प्रेमगीत लिखा करते थे। बाद में हिन्दी ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार रह गये और हो गई 'पीर पर्वत सी पिघलनी चाहिए या हिमालय से गंगा निकलनी चाहिए' से साहित्य में अमर हो गये। अमंद जी भी 'चिनगारी' पत्रिका में छपते थे, जहाँ त्रिलोचन शास्त्री का स्नेह डॉ. शंभूनाथ सिंह, नवगीत के प्रवर्तक का गीत, ठाकुर प्रसाद सिंह की कहानी, श्रीरामदास मिश्र की कविता एवं कहानियाँ प्रकाशित होती थीं। इनकी ख्याति से प्रभावित होकर जातीय पत्रिकाओं के संपादकों ने कविताओं को छापने का आग्रह किया और बिना भेदभाव के अमंदजी ने उस समय प्रकाशित पाँच पत्रिकाओं में कविताएँ भेजनी शुरू की दी थी। इस प्रकार जातीय साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। वैसे जातीय पत्रिकाओं के संपादक विशेष मानवीय तथा राष्ट्रीय होते थे। नवागत लेखकों और कवियों को प्रोत्साहन देनेवाले सहयोगी होते थे। देश की विभिन्न जातियाँ–जातीय पत्र निकालती थी। अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण रखते हुए राजनीति का संवाहक होती थी। इसके विशेषांक तथा संपादकीय भी गंभीर होते थे। लेखकों की जननी होती तदोपरांत–अमंद जी ने 'प्रतिभा प्रसार' का संगठन बनाया, पत्रिका का प्रकाशन किया और साहित्यिक सभाएँ कीं। मधुकर सिंह वामपंथी लेखक समादृत हुए, जो प्रो. काशीनाथ सिंह के मित्र थे। इनके अन्य साहित्यिक मित्र थे स्व. दशरथ 'आदिम' दिल्ली, श्रीप्रह्लाद मौर्य नासिक, श्रीमाली प्रसाद 'निष्काम', कानपुर, तिन्दा प्रसाद इलाहाबाद, वर्तमान में पी.सी. मौर्या दिल्ली, डी.वी. अभिलाषी खाण्डवा, डॉ. जयजय राम 'आनंद' भोपाल, राजर्षि डॉ. रमाकांत शास्त्री, कान्त कुशवाहा लखनऊ, श्रीबाबू सिंह कुशवाहा उज्जैन, इंजी. डालचंद कुशवाहा, दिल्ली–ये सब महानुभाव वाराणसी के नहीं थे। वाराणसी में इनके प्रशंसकों की संख्या प्रचुर थी।

श्रीजवाहरलाल शास्त्री, एडवोकेट 'चंचल' अमंदजी के लघु भ्राता हैं। स्वयं अच्छे कवि एवं हास्य–व्यंग्य लेखन में निर्गत है। वाराणसी के महामृत्युंजय महोत्सव के संरक्षक हैं। 'कुछ अपनी सब अपनो को' काव्य संग्रह के प्राक्कथन में कुछ कहना है अपनी जुबां से में लिखते हैं (अपनी दुबली पतली काया में युगों से संघर्षरत यह साहित्यिक ध्रुवतारा साहित्य के अदृश्य नीलांचल में कब प्रस्फुटित हुआ और कितना प्रकाश साहित्य समाज को लुटा चुका है।)

(ज्ञातव्य है कि भगवान बुद्ध को दुबली पतली काया में ही ज्ञान की प्राप्ति हुई थी।)

यह उद्‌गार एक लघु भ्राता के अपनत्व का उद्‌गार हो सकता है, लेकिन मैंने इनकी रचनाओं को बुद्धत्व के परिवेश में देखा है। जिनमें करुणा की प्रधानता है, जो मृत्यु गीत को अवधारणा को परिपुष्ट करता है। कवि प्रकाश पर्व में लिखते हैं। चलो जलायें दीप ज्ञान का–148 काव्य संग्रह 'कुछ अपनी सब अपनों को' से उद्धृत–

अब भी मंदिर कुछ ऐसे हैं जहाँ न कोई भी भगवान
कुछ आवाजें ऐसी अबतक हो न सकी जिनकी पहचान
जगमग जगमग हुई दिशा में किरण किरण मुस्कुाई पर
उषा के अरुणिम आंचल में लगता नहीं सबेरा है
चलो जलायें दीप ज्ञान का मन में जहाँ अँधेरा है।
(अप्पदीपो भव) बुद्ध–
सुख आहत शान्त उमंगें बेगार सांस ढोने में
यह हृदय समाधि बना है तेरी करुणसा कोने में–(प्रसाद)
धरा पर अंधेरा कहीं रह न पाये
जलाओ दिये पर रहे ध्यान इतना
जिन दिन तेरी याद न आई, सुबह न आयी शाम न आयी
जिसने लगन लगाई उमर भर नींद न आयी 'नीरज'

इसी तरह अमंदजी की रचनाओं में आध्यात्मिकता का पुट मिलता है। अमंदजी कोई महाकाव्य की रचना नहीं किये, जबकि खंडकाव्य, प्रबंध काव्य रच सकते थे। इतनी काव्यमयी प्रतिभा का यही उत्स था। जहाँ से इनको संपूर्णता मिलती। स्वतंत्र गीतात्मकता इनके विचारों को, भावों को पूर्णता नहीं प्रदान करते।

मन्नालाल अमंदजी का जातीय परिवेश बहुत विस्तृत था। ये छोड़ना चाहें भी तो जाति इनको नहीं छोड़ी। जातीय साहित्य में भी बहुत चर्चित रहे, संपादकों तथा प्रकाशकों के ऊपर थे। इनकी गीतों की पाठक प्रतीक्षा करते थे। गीत, गजल के अतिरिक्त नवगीत की भी झलक कविता में मिलती थी। जबकि नवगीत नहीं लिखते। अतुकान्त कविताओं के विषय में सोचते तक नहीं। जातीय पत्रिकाओं में लिखने तथा प्रशंसित होते रहने के कारण इसी में पूर्णता मानते।

अतुकान्त कविताएँ पश्चिम की आयातित हैं या वहीं की उपज है–परन्तु गीतात्मक कविताएँ अमंदजी के पास आकर ठहर गई। ऐसी स्थिति भी नहीं थी–सन् 1950 के दशक से ही इसमें ठहराव के लक्षण प्रकट होने लगे थे। मूर्धन्य साहित्यकारों ने इसको आगे बढ़ाने में बहुत प्रयास किया, इस विधा के रुकावट की पड़ताल की तो–यही लगा कि गीत में भी कुछ लिखा जा चुका है–कुछ शोध नहीं रह गया है। पाश्चात्य काव्यचिंतक सी.डी. लेविस ने गीत के अंत की घोषणा कर दी और हिन्दी में गीत मर गया। अज्ञेय ने गीत का स्थान गौड़ कहकर पुष्टि की। निराला की नवगति, नवलय, तालछन्द की अवधारणा ने उथल–पुथल मचा दिया। इन्हीं परिस्थितियों में नवगीत का जन्म हो गया। प्रयोगधर्मिता ने नवगीत से आगे बढ़ाया। फिर भी नवगीत ही श्रेष्ठ है, ऐसा भी नहीं है। गीत और नवगीत में गहरा द्वन्द्व है।

नवगीत के क्षेत्र में मन्नालाल जी 'अमंद' अच्छा कर सकते थे। इनकी ऊर्वरमेधा में विस्तार पाने की अनंत क्षमता थी। नवगीत में अब भी इनके लिए बहुत जगह था–इनके भावों में टटकापन था,शब्दों में टोटका था–पाठक सम्मोहित हो जाते थे। इस विधा में एक नवीन संग्रह आ सकता था। जिन भावनात्मक परिवेश में अमंदजी थे–वहाँ एक विधा गद्य पथता भी प्रतीक्षित थी। यहाँ भी पहल कर सकते थे।

मालती के फूल, मीनार चढ़ी धूप तथा कुछ अपनी सब आपनों को' में स्वयं लेखक की अपनी बात होती है। अमंदजी इसको अच्छी तरह जानते और समझते थे। मैं तो 'जहँ–तहँ कर ही प्रकाश' तक ही सीमित रह गया हूँ। इसको जातीय साहित्य की प्रस्तावना ही कहूँगा। इसके आगे मैं जानता भी नहीं।

अमंदजी सिद्धावस्था में पहुँचे हुए कवि थे, अन्त में कुछ देने की स्थिति में पहुँच गये थे। इनकी रचनाएँ मील का पत्थर थी। इनकी रचनाओं को पढ़ते हुए नई पीढ़ी को आगे बढ़ना चाहिए। कविता या गीत में गीतात्मकता होनी चाहिए, चाहे वह तुकान्त हो या अतुकान्त। नवगीत हो या आभासी संसार, पद्य–गद्य, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। प्रथम पुण्यतिथि पर नमनीय है, वंदनीय है।

लघुकथाएं

डॉ. क्षमा सिसोदिया
वाणिज्य केन्द्र, उज्जैन, म.प्र.
मो.–9425091767

परिवर्तन

माँ! आपलोग खाना खा लीजिएगा। कुछ उलझे हुए शब्दों में बोल रेणु गाड़ी स्टार्ट करने लगी।

आज यूनिवर्सिटी में वरिष्ठ नागरिकों की समस्या एवं समाधान पर व्याख्यान–माला है, तो आज मैं कुछ लेट आऊँगी।

व्याख्यान आरंभ हो चुका था। यह तो मुख्य अतिथि के स्वर हैं–''भारत में वरिष्ठ नागरिकों की स्थिति बहुत बेहतर नहीं होती है। जब वह वृद्ध होने की उम्र में पहुँचते हैं तो रोगों के कारण असंगत व्यवहार करने लगते हैं और फिर घर–परिवार के लोग उन्हें सठियाना मानसिक प्रताड़ना देने लगते हैं। फिर रोगों से जूझ रहे शरीर के साथ वृद्धजनों पर दोहरा आघात होता है।''

हॉल में एकदम सन्नाटा पसरा हुआ था। रेणु के कान सब कुछ सुनते हुए भी वह बीच–बीच में घर पर अपने वृद्ध माता–पिता के पास पहुँच जाती थी। उसका नाम संचालिका ने कब बोल दिया, उसे ध्यान ही नहीं रहा। दूसरी बार जब उसे दो शब्द बोलने के लिए निमंत्रित किया गया, तब उसकी तंद्रा टूटी और वह भावनाओं को संयत करते हुए सिर्फ इतना ही कह पायी–

''हाँ, हमारे यहाँ वृद्धजनों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं होता है। अपनी जिंदगी के भागदौड़ में उनकी परेशानियों को कभी समझ ही नहीं पाते हैं। वृद्ध पुरुष घर के कामों में हाथ नहीं बँटाते हैं और एकाकीपन के साथ बीमार हो जाते हैं, जबकि वृद्ध महिलाएँ घर के कामकाज में हाथ बँटाती हैं और व्यस्त हो जाती हैं। मेरी भी तो पिताजी से कितनी तकरार हो जाती है। मैं भी तो उनके खालीपन को कहाँ समझ पाती हूँ। और कार्यक्रम समाप्त होते ही वह बिना चाय–नाश्ता किये ही सबसे माफी माँगते हुए घर के लिए गाड़ी लेकर ऐसी भागी, जैसे कुछ डूबने वाला हो।

गाड़ी की आवाज सुनते ही पिता कॉलबेल बजने से पहले दरवाजे के सामने थे।

''अरे, इतनी जल्दी! तुम तो शाम तक आनेवाली थी न?''

मछुआरे

मछुआरे ने बहुत खूबसूरती से जाल फेंका और उसमें सभी छोटी–छोटी मछलियाँ लहरों से टकराकर जब जाल के पास पहुँचती तो अंदर फँसी सभी मछलियों को खुशी से झुमते–गाते देखकर समझतीं कि सब मजे में हैं, इसलिए वह भी खुशी–खुशी जाल के अंदर आती गयी।

बड़ी मछलियों को देखकर छोटी मछलियों को थोड़ी हिम्मत आ गयी और वह उनके संपर्क में आते ही भ्रष्टाचार की शिकार बनती गयीं। बड़ी मछलियाँ अपनी भूख मिटाने के लिए उन्हें निगलती गयीं।

बेकसूर मछलियों को उसमें से बाहर निकलने का कोई रास्ता न मिल पाने के कारण उसी में गोल–गोल घूमती रह गयीं। यह सोचकर कि एक दिन मछुआरा जरूर आएगा, लेकिन वह फिर कभी नहीं आया, क्योंकि अन्यत्र कहीं वह अपने ही बनाए हुए मकड़जाल में फँस गया था। मछलियाँ उसके फेंके हुए जाल के अंदर तड़प–तड़पकर मृतप्राय पड़ी थी।

आलेख

सिनेमा और साहित्य एक अवलोकन

डा. रणजीत कुमार सिन्हा
मिदनापुर कॉलेज (ऑटोनोमस)
मिदनापुर, पश्चिम बंगाल
मो. 9434153501

हिन्दी भाषी समाज और हिन्दी सिनेमा को लेकर लोगों की राय या सहमती विडम्बना और विरोधाभास से भरे हुए हैं। भारत में सिनेमा की शुरुआत से ही मध्यवर्ग तथा निम्नमध्यवर्ग ने इसे बच्चों, स्त्रियों तथा तथाकथित सभ्य लोगों के लिए सदा ही आपत्तिजनक रहा। इसके पीछे कारण–सिनेमा में स्त्री–पुरुष का प्रेम, जातपात का विरोध, धर्म का विरोध, शारीरिक संपर्क। बच्चों तथा युवाओं को पथभ्रष्ट करना, पढ़ाई से विमुख करना, फूहड़ संगीत आदि समाज को बिगाड़ने के लिए तर्क गढ़े गये, लेकिन बाद में समयानुसार बदलाव भी आता दिखा। सामाजिक आपत्तियों के बावजूद भारत में सिनेमा सबसे अधिक लोकप्रिय हुआ। वैश्विक पहचान बनाया।

जिस तरह साहित्य समाज का दर्पण होता है। ठीक उसी तरह सिनेमा भी एक ऐसी कला–विधा है। जिसकी नियति सारे जीवन को प्रतिबिम्बित करता है। समाज में जो घट रहा है या घटनेवाला है, सिनेमा में उसे आज बहुत पहले दिखा दिया जा रहा है। शुरुआत में भारतीय फिल्म निर्माताओं ने इसे सिर्फ मनोरंजन का साधन न मानकर एक सार्थक संदेश का माध्यम के रूप में स्थान दिया।

1930 तक अवाक् सिनेमा का प्रचलन था। उसके बाद सवाक् सिनेमा का आगमन हुआ। आजादी के बाद भारत में देशप्रेम तथा देश को आजाद कराने के विषय पर बहुत सारी फिल्में बनीं। भारत का गौरवमय अतीत को जनसमूह को बताने के लिए चन्द्रगुप्त, पोरस, शिवाजी, राणाप्रताप, झाँसी की रानी आदि फिल्में बनीं।

भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, रूढ़िवादिता, अस्पृश्यता, जातिप्रथा, वर्गीय असमानता, दहेजप्रथा, बाल–विवाह, किसान, मजदूर, मील मजदूर, निम्न–मध्यमवर्ग की समस्या से लेकर रामायण, महाभारत, पौराणिक चरित्र, हिन्दू–मुस्लिम एकता, अलिफ लैला, अली बाबा आदि

बंगला साहित्य फिल्म निर्माताओं को बहुत आकृष्ट किया, जिसके चलते भारत में सबसे पहले साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनने लगे, यथा–देवदास, गृहदाह, बड़ दी, चित्रलेखा, कंगन, प्रतिभा, शकुंतला आदि।

1934 में कथा सम्राट प्रेमचंद खुद अपनी कहानी पर बनी फिल्म 'मजदूर' में अभिनय किये थे। सामाजिक बदलाव के साथ–साथ सिनेमा में भी बदलाव आया। सिनेमा का सौंदर्यशास्त्र भी बदलता दिखा। अब सिनेमा लोकप्रिय, व्यावसायिक तथा मुख्यधारा जैसों में बँटता नजर आने लगा।

विमल राय, सत्यजित राय जैसा न रहकर सिनेमा में बदलाव हुआ। लोकप्रिय मुख्यधारा सिनेमा में आमजन की समस्याएँ गरीबी, शोषण, अंधविश्वास, सामाजिक कुप्रथाओं से लड़ने के लिए कोई संदेश नहीं है। बल्कि सिनेमा को मूलतः व्यापार से जोड़कर एक उद्योग में बदला जा चुका है। प्रवासी भारतीय की जिंदगी का चित्रण करते दिखे।

वर्तमान समय में सिनेमा केवल और केवल मनोरंजन का साधन बनता दिख रहा है। लोकप्रिय हिन्दी सिनेमा अपनी आदर्शवाद और मानवीयता को खोता हुआ नजर आ रहा है। अच्छे, सार्थक सिनेमा विगत एक दशक से हिन्दी में न के बराबर है। अब बाजार के अनुसार कथा गढ़े जा रहे हैं, उनपर फिल्में बन रही हैं।

विभाजन जो विस्थापन का मूल कारण रहा। यों कहें तो विस्थापन मानव सभ्यता की एक मूलभूत गतिविधि है। कुछ विभाजन के चलते विस्थापित होते हैं, तो कुछ स्वेच्छा से। परदेशी, परदेशिया, परदेश, मदर इंडिया, विदेशिया आदि फिल्मों में हम इसे देखते हैं।

भारतीय प्रवासी साहित्य पर विगत तीन–चार दशक से बहुत हो हल्ला हो रहा है, सेमिनार आयोजन हो रहे हैं, लेकिन मूल प्रवासी जो कि गिरमिटिया मजदूर है, फिजी, सुरिनार, मॉरिशस, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में बस गये, उनके जीवन, वेदना, संताप तथा वर्तमान जीवन पर कोई फिल्म आजतक क्यों नहीं बनी। यह सवाल ही अपने आपमें बहुत अहम है। भारतीय संस्कृति के संवाहक, भोजपुरी भाषा के प्रचारक आज भी अपनी संस्कृति को बचाकर रखे हैं। पर उनपर फिल्म का न बनना भी सिनेमा जगत के लिए एक कलंक है।

बंगाल विभाजन के बाद पूर्वी बंगाल में बिहारी मुसलमानों को जो संघर्ष करने पड़े, उसपर ऋत्विक घटक का सुवर्णरेखा और मेघे ढाकातारा फिल्में बनी, तो पंजाब तथा अन्य प्रांतों के विस्थापन पर गर्म हवा, गमन, शहर और सपना जैसी फिल्में आयीं। बहुत बार हम यह देखते हैं कि प्राकृतिक आपदाएँ भी विस्थापन का कारण बनती है। 'दो बीघा जमीन' फिल्म में इस प्राकृतिक आपदा का मार्मिक चित्रण देखने को मिलता है। यह विस्थापन भारतवर्ष में चिरस्थायी आपदा के कारण ही है। कलकत्ता और मुम्बई जैसे शहरों में बढ़ती यू.पी. और बिहार के लोगों की तादाद इसका प्रमाण है।

भारत में मजदूर सबसे सस्ते में उपलब्ध हैं, जिसके चलते कंटेनरों में छुपकर जानेवाले अवैध भारतीय अप्रवासी मजदूर पर भी फिल्म नहीं बनती दिख रही है। कारण हजारों की संख्या में लोगों की मजदूरी के लिए अवैध तरीका से खाड़ी देशों में भेजने की बहुत बड़े व्यापार देश में फल–फूल रहे हैं, लेकिन उनपर फिल्म बनाने की हिम्मत किसी भी निर्देशक में नहीं है।

श्रीलंका में जो गृहयुद्ध हुआ, वहाँ पर बसे प्रवासियों पर क्या गुजरा, भारत के तमिल प्रांत के लोगों का श्रीलंका में बसना, अमानवीय गृहयुद्ध में अपनों को खोना, घृणा, नफरत पैदा होना आदि के चित्रण पर एक भी फिल्म नहीं बनी।

अफ्रीका में गोरों ने जो किया, अमेरिका में रेड इंडियन्स के साथ जो अमानवीय आचरण तथा विगत कुछ वर्षों पूर्व महाराष्ट्र में उत्तर भारतीय के साथ जो आचरण हुए, उसपर भी फिल्म नहीं बनी। सबसे भयानक हालात तो अवैध रोहाणियाँ का भारत में प्रवेश तथा राजनीतिक वोट बैंक अभी चालू है। ये शरणार्थी भारत को किस तरह से असहिष्णु बनायेंगे, इसपर भी कोई फिल्म न आना, बहुत बड़ा षड़यंत्र लगता है।

भारतीय सिनेमा जगत पर भी राजनीति का पूर्ण नियंत्रण दिखता है। सरकार बदलते ही सिनेमा की पटकथा भी बदलती है। कभी पड़ोसी देश के सैनिकों से लड़ाते हुए तो कभी नेताओं की बदजुबानी को दर्शाते हुए फिल्म बन रही है। देश में व्याप्त हजारों समस्याएँ हैं, जो आमजन से जुड़ी हुई हैं, लेकिन उपभोगतावादी संस्कृति ने सब कुछ को उपभोग में बदलने की कसम खा रखी है।

नक्सलवाद, आतंकवाद, मुम्बई अंडर वर्ल्ड, गठबंधन की राजनीति, राजनीति में परिवारवाद, नेताओं की चरित्रहीनता, शिक्षण संस्थानों का गिरता स्तर, बढ़ती बेरोजगारी आदि मुद्दों पर छोटी बजट की फिल्में बन रही हैं, जिनका प्रचार–प्रसार अधिक नहीं हो पाता है। दूसरी तरफ धार्मिक भावनाओं को भड़काने के लिए एक विशेष सम्प्रदाय को नीचा दिखाने के लिए भी कुछ खास तकमे के तथाकथित बुद्धिजीवियों द्वारा कुछ मनगढ़न्त कथा रचकर भी फिल्में आ रही हैं, जो समाज में अलगाव, हिंसा फैलाती हैं।

भारत और चीन का संबंध पर क्यों नहीं फिल्म बनी? भारत से बहुत

सारे विद्वान चीन जाते हैं, लेकिन चीन–भारत संबंध पर कोई फिल्म न बनना भी एक संदेहास्पद है। काश्मीर से विस्थापित लोगों के दुख–दर्द पर भी न के बराबर फिल्में हैं और जो एक–आधे फिल्में आई, उसमें सत्य को छिपाया गया है।

कुछ फिल्में समाज में जान–बूझकर नफरत फैलाने की भावना से ही बनाई जाती है। खासकर हिन्दू–मुस्लिम तनावों को लेकर। इसमें एक अच्छा हिन्दू, एक बुरा हिन्दू, एक अच्छा मुसलमान, एक बुरा मुसलमान। फिर एक हिन्दू लड़का तथा मुस्लिम लड़की का प्यार या मुस्लिम लड़का एवं हिन्दु लड़की का प्रेम प्रसंग, विवाह, जो समाज में दंगा जैसी हालात पैदा करता है।

सोवियत संघ के देशों से हजारों की संख्या में वेश्याएँ भारत में या अन्य देशों में देह व्यापार के लिए आ रही हैं, लाखों रुपये हर माह कमा के ले जा रही है। नेपाल तथा बंगला देश से लाखों की संख्या में नबालिग लड़कियाँ भगाई जा रही हैं। भारत से अरब देशों में काम दिलाने के नाम पर लड़कियाँ भेजी जा रही हैं, उनसे देह व्यापार कराया जा रहा है। उनपर भी फिल्में न के बराबर है। सरकारी बाबुओं, नेताओं द्वारा गेस्ट हाउस, होम में अनाथ लड़कियों को अपनी हवश का शिकार बनाने की चर्चा कभी–कभार अखबार में आता है, लेकिन उसपर फिल्म नहीं बन रहा। आखिर इन जटिल समस्याओं पर महान फिल्में बन सकती हैं। हमारे यहाँ साहित्यकार एवं समाज दोनों ही दो ग्रह के निवासी लगते हैं।

हमारे देश में सुविधा–सम्पन्न वर्ग, अपराधबोध से ग्रस्त, खुद को आंदोलनकारी, जनकल्याणकारी कहकर ड्राइंगरूम में बैठकर सुरा, सुंदरी और कबाव में लिप्त, जो फिल्म निर्माता भी है तथा आर्थिक सहायक, वह अपनी मुनाफे को देखकर ही बाजार की माँग के अनुरूप फिल्म बना रहा है। असम, झारखंड, छत्तीसगढ़, तेलंगाना में जो नक्सलवाद के नाम पर कोहराम मचा हुआ है, आज भी वहाँ की आधी आबादी हाशिए पर है। जल, जंगल और जमीन की लूट हो रही है, उसपर चुप्पी साधना, उसे फिल्म के जरिए जन समूह के सामने नहीं लाना, सिनेमा जगत के लिए कलंक है।

साइंस फिक्सन या टैक्नोलॉजी पर हिन्दी फिल्में न के बराबर है, जबकि इन विषयों पर होना चाहिए। आजकल हिन्दी फिल्मों में आइटम सांग के नाम पर नंगापन को अनिवार्य रूप से रखा जा रहा है। वास्तविक समस्याओं को दरकिनार करते हुए जो कि समाजहित के लिए सुखद नहीं है।

सिनेमा का महत्व सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। सिनेमा मानव जीवन को बहुत हद तक समृद्ध भी किया है। असहनीय मानव जीवन को कुछ हद तक सहनीय भी बनाया है। चाहे वह लोकप्रिय सिनेमा हो या कला सिनेमा, अब उसका प्रभाव समाज से बहुत आगे नजर आता है। समाज, संस्कृति, साहित्य, नृत्य, भाषा, राजनीति, इतिहास, धर्म तथा विज्ञान पर भी इसका प्रभाव देखने को मिल रहा है।

सिनेमा का महत्व भी हम पाश्चात्य से ही जान सकें। हमारे यहाँ पहले नौटंकी, यात्रा आदि होता था। सिनेमा के बढ़ते प्रभाव तथा सामाजिक यथार्थ के चलते इसे अकादमिक स्थान में भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। यह लोकरंजक संस्कृति की तहत लोगों में लोकप्रिय सिद्ध हुआ।

सिनेमा विश्व की सर्वाधिक विधा है। प्रत्येक दर्शक को अपना मत–अधिकार होता है। सिनेमा जैसा लोकप्रिय कला और कोई नहीं है। सिनेमा का इतिहास भी बहुत अधिक पुराना नहीं है। करीब 125 वर्षों का, पर यह मानव जीवन पर धर्म से भी अधिक प्रभाव स्थापित कर चुका है।

भारतीय भाषाओं को जोड़ने में सेतु का कार्य सिनेमा ही करता है। सिनेमा की शुरुआत जिस उद्देश्य को लेकर हुआ था, उसके पीछे साहित्य था, पर आज साहित्य बहुत हद तक कुछ क्षेत्रों में सिनेमा से बहुत दूर नजर आ रहा है। कारण आज साहित्यकार लोक, जन से बहुत दूर है, जबकि आंचलिक सिनेमा लोक, जन से बहुत करीब।

अतः अब आंचलिक सिनेमा ही समाज को तमाम विसंगितयों से अवगत कराता नजर आ रहा है।

पृष्ठ 31 का शेष

ले रहे हैं?" तो उन्होंने कहा–''शायद आप नये मालूम होते हैं, वह पी.पी. है। अहमद ने कहा कि यह तो प्रेमचंद की कही बातों को पूरा मान रहे हैं, बगल में बैठे वकील ने कहा–क्या मतलब। अहमद ने कहा–प्रेमचंद ने कहा था कि ''टेबुल के नीचे का पैसा मजार का चढ़ावा है, कभी घटता नहीं।'' मरहूम ने ठीक ही कहा था–बगल में बैठे वकील साहब मुस्कुराने लगे। दोनों बातें कर ही रहे थे कि अंदर जिला जज आ गये। सबों ने उठकर आदाब किया, जिला जज साहब ने भी सबों को जवाब में आदाब कहा। फिर नम्बर के हिसाब से मामले की सुनवाई शुरू हो गई। कुछ देर के बाद अहमद की फाइल पर जो नंबर लिखा था, पुकार हो गयी। घबराते हुए अहमद आगे बढ़ा, उस वक्त उसके दिल की धड़कन अचानक रॉकेट से ज्यादा तेज चलने लगी, जज तो जज होता है।

जिलाजज ने पूछा–क्या आप नये आये हैं?

अहमद ने जवाब में जी सर कहा।

फिर जज साहब मुकद्दमे से मुताअलिक सवाल में जवाब करने लगे। अहमद की समझ में जो आ रहा था, वह ठहर–ठहरकर जवाब दे रहा था। जज साहब मुस्कुराने लगे और कहा–ठीक है।

अहमद जल्दी से इजलास में बाहर आकर चेहरे का पसीना साफ करता हुआ अपने टेबुल पर आकर बैठ गया। हनीफ साहब की नजर अहमद पर पड़ते ही पूछने लगे–क्या सुनवाई हो गयी। अहमद ने कहा–जी सर! हनीफ साहब ने कहा–शाम में जाकर जज साहब के इजलास के सामने नोटिस बोर्ड लगा हुआ होगा, वहाँ पर जमानत से मुताअलिक लिस्ट टंगी मिलेगी, उसमें देख लेना कि जज साहब ने लिखा है।

शाम को लिस्ट नहीं टंगी थी, पेशकार ने बताया कि कल सुबह लिस्ट टंगेगी। अभी जज साहब ने दस्तखत नहीं किये हैं। अहमद ने जाकर हनीफ साहब से कहा कि साहब जमानतवाली लिस्ट कल सुबह टंगेगी। अहमद यह कहकर घर की तरफ निकल गया।

दूसरे दिन अहमद को घर के कामों की वजह से कोर्ट पहुँचने में देरी हो गई। जब अपने टेबुल पर आ गया तो देखा कि काफी भीड़ जमी है। अहमद को देखकर एक आदमी खड़ा हो गया और कहा कि बैठिये वकील साहब, आज देर हो गयी। आपका इंतजार हमलोग बहुत देर से कर रहे हैं। अहमद हनीफ साहब को देख ही रहे थे कि पास ही बैठे बुजुर्ग आदमी खड़े होकर अपने होंठों पर मुस्कुराहट लिए एक लिफाफा अहमद की तरफ बढ़ाते हुए कहा–बेटा! तुम्हारा बहुत–बहुत शुक्रिया।

कहानी

अनसुलझा प्रश्न

शुभदा मिश्र
पटेल वार्ड, डोंगरगढ़ (छ.ग.)
मो.–8269594598

घटना पुरानी है, काफी पुरानी। मगर मेरे जेहन में अभी तक जीवंत है। इसलिए नहीं कि वह कोई विशेष घटना थी। बल्कि इसलिए कि यह बात मुझे आज भी उलझन में डाल देती है कि मेरे उन दुश्मन को पता कैसे चला कि मैं आई हुई हूँ, खबर किसने की उन्हें, जबकि मैंने पूरी सतर्कता बरती थी।

उस दिन मैं सबेरे–सबेरे पटना पहुँची थी, राजेन्द्रनगर। दरवाजा उसके पति ने ही खोला। मुस्कराकर नमस्कार किया। बोला–पूर्णिमा! देखो तो कौन आया है?पूर्णिमा सामने आई। कुछ असमंजस में दिखी। मैं बोली, आपलोग परेशान मत होइए। अपने काम में लगे रहिए। मैं बैठती हूँ आराम से। पूर्णिमा बोली–'किस गाड़ी से आई?'

श्रमजीवी से।

बोली–फ्रेश हो लीजिए, मैं चाय बनाती हूँ।

मैं स्टेशन से ही फ्रेश होकर, चायवाय लेकर आ रही हूँ। आपलोगों को अपने–अपने काम पर जाना है, तैयार होइए।

उसके पति के ऑफिस जाने का समय हो ही रहा था। वे तैयार हो ही रहे थे। साथ में बेटी को भी तैयार करते जा रहे थे। मुझे याद आया, जब यह बच्ची पेट में थी, पूर्णिमा मेरे घर आया करती थी, अपनी समस्याओं को लेकर। मुझसे उम्र में छोटी है। सो दीदी कहती थी। पूर्णिमा बाप–बेटी को नाश्ता कराने लगी। चाय दूध वगैरह दिया। बेटी को लेकर पूर्णिमा के पति चले गये। बेटी को स्कूल छोड़ने, फिर खुद ऑफिस जाने।

पति के रवाना होते ही पूर्णिमा सहज नजर आने लगी। कहने लगी...आप आई हैं। मैं छुट्टी ले लेती, मगर मुझे फॉर्म में अपने विभागाध्यक्ष के दस्तखत लेने हैं। दस्तखत लेकर उसे फोरन दिल्ली रवान करना है। मैं थोड़ी देर के लिए कॉलेज जाऊँगी।

मैं बोली–मेरे कारण तुम अपने कार्यक्रम में परिवर्तन मत करो। मैं तो स्वयं जरूरी काम से ही आयी हूँ। वह सब बताऊँगी। मगर पहले तुम तैयार तो हो लो।

पूर्णिमा नहाने चली गयी। मैं बैठक में सोफे पर बैठी अपनी ही योजनाएँ गुनती रही। पूर्णिमा नहाकर पूजाघर में घुस गई। पूजा समाप्त कर चाय बनाने लगी। हम खाने की मेज पर आए। पूर्णिमा कहने लगी–आप अचानक गायब हो गयी। फिर अचानक आ गयी। मैं समझ नहीं पा रही हूँ।

मैं बताने लगी–मैं किसी तरह यहाँ से जान बचाकर निकल तो गई। बिना कुछ लिये। जल्दी में सिर्फ कुछ पैसे, शैक्षणिक योग्यता के प्रमाणपत्र और कुछ जरूरी कागज वगैरह बैग में डाल लिये थे। दिल्ली पहुँची। तीन दिन तक स्टेशन में ही रही डारमेटरी में बेड लेकर। बहाना बनाया कि मैं दिल्ली घूमने आई हूँ। स्टेशन में रोज सबेरे ढेर सारे अखबार खरीद लेती और एक तरफ बैठे–बैठे 'आवश्यकता है' के कॉलम देखती रहती। अपने लायक नौकरियों के विज्ञापन नर निशान लगा देती। सारे दिन तलाश–तलाश कर उन विज्ञापनदाताओं से मिलती रहती। तीसरे दिन मुझे नौकरी मिल ही गई। नौकरी छोटी थी, ऑफिस की व्यवस्था संभालने का काम। मगर सहारा तो मिल गया। नौकरी मिलते ही मैंने पास के ही दूकान में पूछा–'भैया! यहाँ आसपास कोई प्रापर्टीडीलर है?उसने बता दिया। मैं प्रापर्टीडीलर से मिली। बोली–भैया! मैं इस ऑफिस में काम करती हूँ, अकेली हूँ। क्या आप मुझे यहीं आसपास एक कमरा दिला सकते हैं?प्रापर्टीडीलर ने सचमुच पास की एक बिल्डिंग में एक कमरा दिला दिया। मगर अपना कमीशन माँगा–दो महीने का अग्रिम किराया। मकान मालिक ने भी माँगा–दो महीने का अग्रिम किराया। मेरे पास इतना पैसा कहाँ?मगर हाँ, गले में सोने की चेन थी, कान में सोने की बुंदे। तुरंत आभूषणों के बाजार में गई। दोनों चीजें बेची। प्रापर्टी डीलर और मकान मालिक दोनों को पैसा चुकाया। जीवनयापन के लिए जरूरी सामान खरीदे। जैसे–तैसे अपना कमरा सजाकर मैं ऑफिस जाने लगी। बिल्डिंग में कई परिवार रहते थे। प्रापर्टीडीलर ने सबसे कह रखा था, इन मैडम ने शादी नहीं की है। मैं स्वयं भी उन्हें बहुत व्यस्त दिखती। सो उन लोगों ने मुझे विशेष नहीं छेड़ा।

मगर ठंढ आने लगी। रजाई गद्दे, पहनने के गरम कपड़े, सबकी जरूरत पड़ने लगी। पास के पैसे खत्म हो गये थे। करूँ तो क्या। विवाह के आरंभिक दिनों में मुझे नौकरी करने दिया गया था। उसी का पैसा यहाँ बैंक में है। उसे ही निकालने आई हूँ। नगद साथ ले जाना ठीक नहीं। सो बैंक ड्राफ्ट बनवा लूँगी।

पूर्णिमा बताने लगी–आपके जाने के बाद आपके पति ने बड़ा हंगामा मचाया था। हमारे घर भी पूछने आया था। बहुत अनाप– शनाप बक रहा था...लाखों के गहने लेकर भागी है। छोड़ूँगा नहीं।

मैंने बताया, मेरे मायके जाकर भी खूब हंगामा किया था। वहाँ सबको धमकी देकर आया है–क्या–क्या करूँगा, देखना तुमलोग। इसीलिए मैं मायके नहीं गई। दिल्ली चली गयी।

पूर्णिमा कहने लगी–देखिये, सावधानी बरतिएगा। उस दुष्ट आदमी का कोई भरोसा नहीं।

पूर्णिमा का घर मेरे पतिगृह के पास ही था। बीच में था सेंट्रल बैंक, जिसमें मेरा पैसा था। इस इलाके में मैं बरसों रही हूँ। लगभग सभी को पता था, इस महिला का दुष्ट पति इसकी दुर्गति किये हुए है। सो सब इस दुर्भाग्य की मारी को तमाशबीन नजर से देखते थे। सिर्फ पूर्णिमा ही मुझसे सहानुभूति रखती थी। उन दिनों वह भी परेशानियों से घिरी हुई थी, विशेषकर अपने पति को लेकर। मौका निकालकर मुझसे मिलने आ जाती। मेरे पति घर में न हों तो हम खूब बातें करते। मैं अपने निकल भागने की योजना बताती। पूर्णिमा एकदम सहम जाती। सहमने का कारण भी–मेरे पति की स्पष्ट चेतावनी थी–ज्यादा हाथपाँव मारी तो गुंडों से बलात्कार करवाऊँगा। पचास हजार में एक मर्डर होता है। फेकूँगा पचास हजार, कर दो हरामजादी के टुकड़े–टुकड़े। खिला दो कुत्तों को। अपने को बहुत सभ्य,सुसंस्कृत, सती नारी समझती है। कहती नहीं है तो क्या, इसका पूरा ढंग बताता है, अपने को श्रेष्ठ समझती है, जैसे कि बहुत ऊँचे स्तर की प्राणी हो।' एकाध बार कोई क्षण मुझे मिला तो कलपकर पूछा–''जब तुम्हें मुझसे इतनी घृणा है तो तलाक क्यों नहीं दे देते। हत्या का पाप क्यों लेना चाहते हो?' कुसंस्कारों और अपराधी माहौल में पला बढ़ा आदमी बेखौफ बोला–''मेरी मर्जी।' यह मर्जी उस दिन से एकदम सिर चढ़कर उत्पात मचाने लगी थी, जिस दिन डॉक्टर ने मेरे सामने ही उसकी रपट देखकर कसकर डाँटा था–''इस लड़की की जिंदगी क्यों बर्बाद कर रहे हो। छोड़ो इसे।'' वह छोड़ नहीं सकता था। मर्डर करवा सकता था। पूर्णिमा ने अपने पति के बारे में बताया था कि उसके पति सामान्यतया ठीक है, मगर उन्हें सोचने समझनेवाली औरतें अच्छी नहीं लगती। विद्रोह करनेवालियों से तो नफरत। मैंने पूछा था, तब तो तुम्हारे पति मुझसे बहुत चिढ़ते होंगे। वह टाल गई थी–''अरे, उनकी तो

स्वाभाविक सहानुभूति ही पुरुषों के प्रति है। घर में तो मेरी चलती है न।'' वैसे उसके पति से कभी मेरी मुलाकात हुई, बड़ी शिष्टता से नमस्कार करते। बड़े सज्जन लगे।

चाय की मेज पर जी भर कर बतियाकर पूर्णिमा तैयार होने लगी। साढ़े दस बज रहे थे। मैं बैंक के लिए निकल गयी।

काम–धंधे का समय। सड़क पर भारी आवाजाही। मुझपर भय भारी होने लगा–हे भगवान! मुझे कोई परिचित देख न ले। कहीं बैंक में वही दुष्ट न दिख जाए। कहीं वह पड़ोसिन प्रेमलता न दिख जाए। मैं जब भी बैंक आई थी, कोई–न–कोई पड़ोसी दिख ही जाता था। आँख भी मेरी कमजोर है। स्वभाव से सतर्क भी नहीं हूँ। दूसरे मुझे पहचान लेते हैं। मैं नहीं पहचान पाती। सिर ढककर, मुँह नीचे किये हुए सड़क के किनारे–किनारे चलती मैं बैंक पहुँची। आशंकाओं से घिरी, जिस संबंधित अधिकारी से काम हो, कहीं वही नहीं आया हो। खैर, वह अधिकारी दिख गये। उसने अपनी बात कही। उन्होंने एक फॉर्म दिया, इसे भरकर दीजिए। एक कोने में बैठकर सिर झुकाए मैं फॉर्म भर रही थी। चेक काटकर दे रही थी। चेतना लगी हुई है, कान लगे हुए हैं–कहीं वही दुष्ट तो नहीं आ गया। कहीं कोई परिचित तो नहीं।' फॉर्म और चेक उन अधिकारी को दिया। उन्होंने दूसरे अधिकारी के पास भेजा। वे बोले–जरा बैठिए। मैं जाकर एकदम आखिरी कोने में सिर झुकाए दुबककर बैठ गयी। मन ही मन बुदबुदाती–भगवती रक्षा करो–ॐ ह्रीं क्रीं क्रां जैसे ही उस अधिकारी ने कहा–चार बजे आकर ले जाएगा, मेरी जान में जान आई।

बैंक में लोग लगातार आ जा रहे थे। बहुत सतर्कता से बचती–बचाती मैं बाहर आई। दुर्गाजी का जप करती बैंक की सड़क पार कर दूसरी सड़क पर आ गयी। घर पहुँची। पूर्णिमा चकित, अरे इतनी जल्दी हो गया।

बताया–अभी नहीं हुआ है, चार बजे बुलाया है।

तैयार होकर पूर्णिमा कॉलेज के लिए निकल गई। मैं बैठक में दीवान पर लेट गई। झपकी आ गयी। अभागा मन दौड़ने लगा–यहाँ से कुछ दूर पर तो है मेरा घर। वह सुसज्जित बैठक, वह आरामदायक बेडरूम, वह व्यवस्थित अध्ययनकक्ष, वह प्यारा पूजाकक्ष। कितनी लगन, कितनी भावना से सजाया था एक कमरा। एक–एक कोना। मान लो मैं अभी वहाँ चली जाऊँ। कितना सुखद लगेगा आराम से अपने बाथरूम में नहाना, ढीलाढाला गाउन पहनकर अपने पलंग पर सो जाना। पति न हो तो वह घर स्वर्ग लगता था। उस स्वर्ग को छोड़कर मैं यहाँ पड़ी हूँ।..

पूर्णिमा कॉलेज से जल्दी ही आ गयी। पूर्णिमा का भरापूरा घर। वह खाने की मेज लगवा रही है। नौकरानी को आदेश दे रही है– दाल छौंक दो, पापड़ तल दो, तिलौरी तल लो। रोटी जब खाने लगे, तब सेंकना। मैं देख रही हूँ। भीतर कुछ दरक रहा है। कुछ दिन पहले तक मैं भी ऐसे ही खाने की मेज लगाती थी। आदेश देती थी।

भोजन के बाद हम लेटे–लेटे बतियाते रहे। बताया मैंने–उस आततायी के जाल से निकलकर मैं कितना अच्छा महसूस कर रही हूँ। ऑफिस का काम संभालने के लायक हो चुकी हूँ। सहकर्मी सामान्यतया सहयोग ही कर रहे हैं। ऑफिस से शाम को आती हूँ, तो अक्सर बिल्डिंग की महिलाएँ बतियाने आ जाती हैं। मेरे बारे में जानना चाहती हैं। उन्हें ताज्जुब है कि इतने सीमित साधनों में मैं कैसे खुश रहती हूँ। सचमुच बरसों की दारुण दुर्गति के बाद मुक्ति पाकर मेरे तन–मन में खुशी भर गई है। समस्या पैसों की है। इन पैसों से ढंग से रहने का जुगाड़ हो जाएगा तो ठीक लगेगा। तनख्वाह थोड़ी है, पर गुजारे लायक है। बात करते–करते चार बज गये। मैं बैंक गई। वैसे ही आशंकाओं कुशंकाओं में घिरी। मन ही मन दुर्गाजी का जप करती। अपना बैंकड्राफ्ट लेकर आ गई।

पूर्णिमा ने चाय बनाई। चाय पीते–पीते बताने लगी–मुझे अपने वकील से मिलना है, जिसने मेरे यहाँ से जाने के बाद मेरे पति को तलाक का नोटिस भेजा था। उसके पास मुझे एकाध घंटा लग सकता है। वहीं से मैं स्टेशन चली जाऊँगी। सबेरे जब मैं ट्रेन से उतरी थी, तभी मैंने लौटने का आरक्षण टिकट ले लिया था मगध एक्सप्रेस में। मगध शाम साढ़े छः बजे जाएगी। वेटिंग लिस्ट में मेरा नंबर दो सौ उन्नीस था। अभी क्या स्थिति है, यह सब पता करना पड़ेगा। इसलिए अब मैं निकल ही जाती हूँ। पूर्णिमा ने जल्दी–जल्दी पराठे–सब्जी बनवाकर पैक किये। मेरे बैग में डाला। हियादत देती जाती, ''सावधान रहिएगा। वहाँ से अपना हाल–समाचार भेजते रहिएगा। जी लगा रहता है।'' नौकर से उसने रिक्शा बुलवा दिया। गले मिलकर मैं विदा हुई। मन भर रोया।

ऊपर टपने लगे रिक्शा में आँचल से सिर मुँह अच्छे से ढँके मैं रिक्शा में बैठी। लोहानीपुर, कदमकुआँ पार कर जब रिक्शा बुद्धमूर्ति तक पहुँचा, मेरी जान मे जान आई। मैंने रिक्शावाले से कहकर टप हटवा दिया। सिर से आँचल भी हटा लिया। खुले रिक्शे में आराम से बैठ गई, पूरे शहर का हसरत से देखने लगी। अंतिम बार। ठंढ की शाम। रोशनियाँ जलने लगी हैं। सड़कों की, दुकानों की, घरों की। लोग आ जा रहे हैं। बोल बतिया रहे हैं। हँस रहे हैं। ठहाके लगा रहे हैं। महिलायें खरीददारी करके भारी थैले लिए बोलती–बतियाती, हँसती, मुस्कुराती घर लौट रही हैं। बीस बरसों तक रही मैं इस शहर में। यातनाओं की सलीब पर चढ़ी। बहुत लोग मेरा हालचाल जानते थे, मेरे बिना बताये, बिना मिले। मगर कहीं से किसी सहानुभूति का हल्का सा झोंका भी नहीं। किसी घर, किसी आँगन, किसी कोने से आत्मीयता की कोई झलक नहीं। हर नजर, जैसे कोई तमाशा होऊँ। जो भी अंतरंगता मिली, वह पूर्णिमा से। सहानुभूति बाद में उन दो–चार महिलाओं से भी मिली थी, जो उन दिनों हिम्मत कर अत्याचार पीड़ित महिलाओं की मदद के लिए आगे आ रही थीं। उनमें मेरी यह वकील मिथिलेश कुमारी थी। इनका अखबार में विज्ञापन देखने के बाद मैं किसी तरह मौका निकालकर इनसे मिली थी। पूरी बात सुनने के बाद उन्होंने मुझसे कहा था–आप किसी तरह यहाँ से निकल लीजिए और मुझे खबर कीजिए। मैं इसे तलाक का नोटिस भेज दूँगी। दिल्ली पहुँचने के बाद सबसे पहले मैंने इन्हें ही फोन किया था और इन्होंने उस दुष्ट आदमी को तलाक का नोटिस भेज दिया था।

मगर इस समय वह मुझसे बहुत ढंग से मिली। शायद इसलिए कि जब मैंने बताया कि मैं अपना पैसा निकालने आयी हूँ तो उन्हें जरूर लगा होगा कि मुझे उनकी फीस देना चाहिए। मगर मैं अभी पैसा देने की स्थिति में नहीं थी। सो उनके ठंढे व्यवहार के बावजूद मैं उनका हृदय से धन्यवाद कर निकल आई। छह बजने जा रहे थे। अंधेरा घिर आया था। इस तरफ सड़क ऊबड़–खाबड़ थी, गीली भी, रोशनी भी नहीं थी। कोई सवारी भी नहीं दीख रही थी। कंधे पर बैग लटकाये मैं स्टेशन की ओर भागी जा रही थी। मेरा घर, मेरा प्यारा घर, वह बैठक, वह शयनकक्ष, वह अध्ययनकक्ष, वह प्यारा पूजा घर, फिर मेरी आँखों के आगे तैरने लगे थे–कहाँ भागी जा रही हो...आ जाओ.. .आ जाओ..तुम समझती हो, तुम्हारा यहाँ कोई नहीं, मगर हम तो तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं। तुम्हारे कपड़े–लत्ते, पुस्तकें, किचन, पूजाघर में बैठे देवी देवता, तुम्हारी जवानी की गंध, जो यहाँ के रग–रग में रची बसी है, सब तुम्हारा इंतजार कर रहे हैं...आ जाओ....आ जाओ।

हृदयविदारक आमंत्रणों को परे ढकेलकर मैं आगे बढ़ती गई ...नहीं फँसना है, अब तुझे सुविधाओं के सुनहले जाल में।

स्टेशन पहुँची।

सामने ही एक युवा टी.टी.ई. दिखा। पूछा–सर! मेरा मगध में आरक्षण है। वेटिंग लिस्ट में दो सौ उन्नीस नंबर है। इस समय क्या स्थिति है, कहाँ पता चलेगा?
उन्होंने एक काउंटर की तरफ इशारा किया–वहाँ पूछ लीजिए।
उस काउंटर में भारी भीड़। मेरा नंबर आया। पूछा। बोले–टी.टी. कक्ष में पता कीजिए।
भागी टी.टी. कक्ष। एक टी.टी. से पूछा। उसने दूसरे टी.टी. की तरफ इशारा किया। उससे पूछा। बोले–आरक्षण में पता कीजिए।
निकली। भागी..कहाँ है आरक्षण। दिखा। लिखा था, अंदर आना मना है।
ठिठकी। फिर घुस ली। कई टी.टी. बैठे थे। एक से पूछा। बोले– सामने इन्क्वायरी में पता कीजिए। अरे, अभी तो दौड़ती भागती आ रही हूँ सामने से। फिर भागी सामने। इन्क्वायरी काउंटर। भारी भीड़। आया नंबर। उसने टिकट देखा...अब आपका नंबर नब्बे है।
आश्वस्त सही हुई मैं कि तभी घोषणा हुई..मगध बारह घंटे देर से चल रही है। सुबह साढ़े छह बजे आएगी। पस्त पड़ गई मैं।
मगर पस्त पड़ने से कैसे काम चलेगा। फिर गई इन्क्वायरी काउंटर। घुसी भीड़ में। नंबर आया। पूछा–सर! क्या रात में कोई गाड़ी दिल्ली जाने के लिए है?
बोले–रात 2 बजे तूफान है, फिर नार्थईस्ट है।
क्या इनमें से किसी में मुझे एक बर्थ मिल सकती है?
नहीं मिल सकती, सब फुल आ रही है।
फिर पस्त पड़ गई मैं। याद आया, सुबह जब मैं मगध के लिए टिकट कटाकर पूर्णिमा के घर जाने के लिए रिक्शे में बैठी थी, तो परेशानी सी रिक्शेवाले से कहने लगी थी–'भैया! मगध में मेरा नंबर वेटिंग लिस्ट में दो सौ उन्नीस है, जाने मुझे बर्थ मिलेगी कि नहीं!
रिक्शावाला बोला था–स्टेशन में कई ऐजेंट होते हैं बहनजी! उनकी टी.टी. लोगों से मिलीभगत होती है। कुछ ले–देकर वे बर्थ दिला देते हैं।
प्लेटफॉर्म में इधर–उधर फिरते हुए मैं सोचने लगी–ऐसा ऐजेंट कहाँ हो सकता है!
मुझे एक युवक दिखा। दक्षिण भारतीय सा लगा। सोचा, यह लोग दुनिया भर में फिरते रहते हैं, जरूर यह वह सब तरीके जानता होगा। बार–बार इस काउंटर से उस काउंटर फिरते हुए वह युवक मुझे देख भी रहा था। दो तीन बार नजर भी मिल चुकी थी। मैं उसके पास गई और उससे बात की–देखिये, मुझे दिल्ली जाना है। मेरा आरक्षण मगध में है, वेटिंग लिस्ट में। मगर मगध सुबह जाएगी। मुझे जल्दी जाना जरूरी है। क्या आप किसी ऐसे एजेंट को जानते हैं, जो मुझे रात की किसी गाड़ी में एक बर्थ दिला दे। आई विल हेल्प यू–वह जैसे मदद करने के फिराम में ही था, लेट अस गो टू इन्क्वायरी।
देन लेट अस मीट चीफ टी.टी.।
मैं उसके पीछे–पीछे फिर रही हूँ। चीफ टी.टी., रिजर्वेशन काउंटर, इस काउंटर से उस काउंटर। कितने ही काउंटर और कितने ही लोगों से मिलने के बाद वह मेरी तरफ मुखातिब हुआ–आपको मगध में बर्थ मिल सकती है।
सुनते ही मैं बौखला गई, आप मेरी बात सुनते ही नहीं हैं। मैने तो आपको बताया ही था कि मेरा मगध में वेटिंग लिस्ट में नाम है। मैं रात की किसी गाड़ी से जाना चाहती हूँ।
यू सी...वह कहने लगा...टी.टी. लोग कुछ ले देकर रिजर्वेशन करा देते हैं। लेट अस फाइंड सच टी.टी. जो कुछ ले–देकर रात की किसी गाड़ी में आपका रिजर्वेशन कर दे।
मैं एकदम खिसिया चुकी थी। बोली–मुझे नहीं खोजना ऐसा टी.टी. अब मैं सुबह मगध से ही जाऊँगी। ओके, देन लेट अस इन्ज्वाय ट टाईम। चलिये, कहीं चाय–वाय ले लेते हैं।
सुनते ही मेरा दिमाग उखड़ गया–नहीं इन्ज्वाय करना है मुझे टाईम। अब मैं सुबह की ट्रेन का ही इंतजार करूँगी।
मैं आगे बढ़ने लगी। वह मेरे साथ–साथ...यहाँ तो कोई बैठने की जगह भी नहीं है मैडम! कहाँ भटकती रहेंगी। डोंट किल द टाईम। चलिए, किसी रेस्टोरेंट में चलते हैं। लेट अस हैव सम फन।
मेरा दिमाग एकदम खराब हो गया। वह युवक, उम्र में मुझसे कितना छोटा, बार–बार 'लेट अस हैव सम फन' कह रहा है, कसकर डाँटा। आई डोंट नीड एनी फन। लीव मी..।
उसी बुरी तरह झिड़ककर मैं महिला प्रतीक्षालय में पहुँची। भीड़ थी, मगर मुझे बैठने की जगह मिल गई। बैठे–बैठे मैं सोचने लगी–मुझे डॉक्टर शाहदा हसन और प्रोफेसर नसीमा खान से मिल लेना चाहिए। ये दोनों भी उन दो चार महिलाओं में थीं, जो उन दिनों पीड़ित स्त्रियों की मदद के लिए आगे आने की हिम्मत कर रही थीं। अखबारों में इनका नाम पढ़कर मैं किसी तरह इनसे भी मिली थी। इन लोगों ने कहा था–ऐसे पागल आदमी के साथ रहना खतरे से खाली नहीं। पहले तो आप किसी तरह निकल लो और हमें खबर करो। नसीमा दीदी साफ बोली थीं, हम अपने घर में आपको नहीं रख सकते। यह आदमी हिन्दू–मुस्लिम करा देगा। मगर इसी बीच मुझे मौका मिल गया था और मैं निकल ली थी। दिल्ली जाते ही सिर्फ वकील मिथिलेश जी को खबर कर पाई। इन्हें खबर नहीं कर पाई। उन दिनों मोबाईल चलन में था नहीं। किसी टेलीफोन बूथ में बैठकर बात करनी होती थी। उसमें पैसा भी बहुत लगता और समय भी। मैं कड़की की मारी। अपने इन हितचिंतकों से बात नहीं कर पाई। अभी समय है। मैं यहीं से किसी टेलीफोन बूथ से बात कर इन्हें बात तो दूँ कि मैं दिल्ली में हूँ और ठीक से हूँ। उनका धन्यवाद भी कर दूँ। बगल में ही मंदिर है। उनसे बात करने के बाद दर्शन भी कर लूँ। उस दिन निकल भागते समय इतनी आतंकित, इतनी बदहवास थी कि दर्शन भी नहीं कर पाई, जो कि मंदिर स्टेशन से सटा हुआ है।
मैंने अपने पास बैठी सहयात्री से कहा–सुनिये, बहन! मुझे सुबह मगध से जाना है। बगल में मंदिर है, सोचती हूँ, दर्शन करके आ जाऊँ। यह मेरा बैग है, क्या आप इसका ख्याल रख पायेंगी?
बोली–मुझे भी सुबह मगध से ही जाना है। आप बेफिक्र होकर दर्शन कर आइए।
मैं प्रतीक्षालय से बाहर निकली। दरवाजे से लगी कुर्सी में प्रतीक्षालय की केयरटेकर बैठी थी। मैं उससे बोली–देखो न, मेरी गाड़ी सुबह है। तबतक मैं क्या करूँ। बगल में मंदिर है। सोचती हूँ दर्शन कर आऊँ। मेरा एक बैग है, जरा ख्याल रखिएगा।
बोली–हम किसी का सामान–वामान नहीं देखते। यह हमारी जिम्मेदारी नहीं है। आप अपना सामान साथ ले जाइए।
ठीक है, आप मत देखना। भीतर एक पैसेजर है, वह देख लेगी।
कौन पैसेंजर है, बोलिये तो। हम अभी उसको निकाल बाहर करते हैं। बोलिये कौन है वो पैसेंजर।
आप उस पैसेंजर को क्यों निकाल–बाहर करेंगी। वह मेरी फ्रेंड है। बोली है, आप दर्शन करके आ जाइए। मैं आपका सामान देख लूँगी।
हम कुछ नहीं जानते। कौन पैसेंजर ऐसा बोली है, चलिये बताइए।
हम क्यों बतायें, तुम लड़ो इसलिए?
बताइए कौन पैसेंजर है, नहीं हम सबका सामान उठा–उठाकर फेंक देंगे।
उसके पास ही स्टूल पर बैठी दूसरी औरत कहने लगी–बिल्कुल फेंक देंगे सामान।
मगर सामान क्यों फेंक दोगे भाई!

चोरी होगा, तो हमारा नाम लीजिएगा कि नहीं?
तुम्हारा नाम क्यों लेंगे हम?
पुलिस पूछेगी तो बोलियेगा नहीं कि पैसेंजर को देखने बोलकर गये थे। आप सामान रखकर गई और वो पैसेंजर कहीं चली गई, सामान चोरी हो गया, तो पुलिस हमसे पूछेगी कि नहीं?
सो तो पुलिस पूछेगी।
बस उसका गर्जन–तर्जन शुरू...कौन पैसेंजर है, जो सामान देखने को बोली है, चलिए बताइए, हम अभी उसको निकाल–बाहर करते हैं।
मैं हतप्रभ, यह क्या हो गया। मुँह से निकल गया–ज्यादा धौंस दिखाई तो पुलिस को रपट करती हूँ मैं। वह और आग हो गयी... चलिये, चलिये...हम डरते हैं क्या?सामान छोड़कर जाएगी।चोरी होगी तो पुलिस हमको धरेगी।
वह रेलवे पुलिस कक्ष की ओर बढ़ने लगी। जोर–जोर से चिल्लाती –सामान छोड़कर जा रही है। कहती है–पैसेंजर को देखने बोले हैं। कौन पैसेंजर है, बताती नहीं है।
वह लगातार गरजती हुई बढ़ती जा रही थी, जैसे किसी भारी अपराध या षड़यंत्र का सुराग मिल गया हो।
मैं मूर्ख की तरह अकबकाई उसके पीछे...
पुलिस कक्ष तक पहुँचने के पहले ही भीड़ जमा हो गयी। लोग पूछने लगे–क्या हो गया, क्या हो गया?
उसका वही चीखना–गरजना–ये औरत सामान छोड़कर जा रही है। हम कहते हैं कि सामान लेकर जाइए, तो कहती है–एक पैसेंजर है, वह देख लेगी, कौन पैसेंजर है बताती नहीं है।
भीड़ में लोग कहने लगे–यह ठीक कह रही है।शी इज राईट।
अरे भाई! उस हंगामें के बीच मैंने किसी तरह समझाने की कोशिश की,ऐसा कोई कीमती सामान है ही नहीं। कुछ कागज पत्तर है। एक शाल है। एक पैकेट है।
देखिये,देखिये, सामान में एक पैकेट भी है।
आप ऐसा संदिग्ध सामान छोड़कर नहीं जा सकती, यह औरत सही कह रही है...एक प्रौढ़ आदमी अंग्रेजी में कहने लगा।
आप कौन होते हैं, कौन सही, कौन गलत का निर्णय करनेवाले– मैंने भी अंग्रेजी में कहा।
आई एम अ क्वालीफाइड पैसेंजर–वह चंदुआ प्रौढ़ हड़कने लगा।
आपसे कम क्वालीफाइड यहाँ कोई नहीं है, मैं भी अंग्रेजी में बोली।
बस फिर बात नियंत्रण से बाहर। वह आदमी उस केयरटेकर से भी ज्यादा गर्जन–तर्जन करने लगा–तुम्हारे जैसी औरतों को मैं बहुत अच्छे से जानता हूँ। बढ़िया कपड़े पहन लेगी, अंग्रेजी बोलेगी और संदिग्ध सामान आरपार करेगी। फँसेगी बिचारी गरीब औरत। कितना नैतिक पतन हो गया है, इन पढ़ी–लिखी आधुनिक दिखनेवाली औरतों का–वह अपार घृणा से कह रहा था।
उस आदमी के गर्जन–तर्जन से भीड़ और भी बढ़ गयी। उड़े हुए होशोहवास में मैं पकड़ाई अपराधी की तरह हतवाक् खड़ी। पूरी भीड़ कह रही है–देखो, देखो, कैसी पढ़ी–लिखी सभ्य दिख रही है। अंग्रेजी बोल रही है। संदिग्ध सामान छोड़कर जा रही है। कोई पैसेंजर से मिलीभगत है। फँसायेगी इस बिचारी गरीब औरत को।कहाँ है वह दूसरी?
कि एक जाता हुआ टी.टी. ठमककर खड़ा हो गया, क्या बात है?क्या हो गया?
लोग बताने लगे–यह औरत कोई संदिग्ध सामान छोड़कर जा रही थी...।
टी.टी. ने अब तुझे देखा–क्या बात है मैडम!
मेरी बोली खुली–कोई बात नहीं सर! मेरी गाड़ी सुबह है। मैंने सोचा, बैठे–बैठे क्या करूँ! मंदिर पास में है, दर्शन करके आ जाती हूँ। मैंने इस केयरटेकर महिला से कहा, मेरा एक बैग है। जरा ख्याल रखना। मैं दर्शन करके आती हूँ। ये बोली–हम सामान का ख्याल नहीं रखते। मैं बोली–ठीक है, मेरी बगल में बैठी पैसेंजर ख्याल रख लेगी। पैसेंजर ने कहा भी था, मैं ख्याल रख लूँगी, आप दर्शन करके आ जाइए।
ठीक ही तो है–टी.टी. बोला।
केयरटेकर एकमद भड़की–अगर वह पैसेंजर कहीं चली गयी और सामान चोरी चला गया, तो पुलिस हमको धरेगी कि नहीं।
यह भी ठीक है–टी.टी. सिर हिलाने लगा।
सामान में कोई संदिग्ध पैकेट भी है–वह चंदुआ प्रौढ़ जोर से बोला।
टी.टी. ने मेरी ओर देखा।
कुछ नहीं है सर!मैंने खिसियाये हुए कहा–सब्जी–पराठे का पैकेट है।
कुछ भी हो–वह केयरटेकर फिर गरजी..वह पैसेंजर कहीं चली गयी और बैग चोरी हो गया, तो पुलिस हमको धरेगी न।
अब मैं उस केयरटेकर को देखा–तुम एकदम पागल औरत हो। इसी बात को अच्छे से नहीं कह सकती थी कि दीदी! अपना बैग भी लेते जाइए। चोरी हो जाएगा, तो पुलिस हमसे पूछेगी।
हम पागल हैं–केयरटेकर आँख निकालकर मुझे देखने लगी।
एकदम पागल हो और मुझे भी पागल कर दी हो।
केयर टेकर मुझे हतप्रभ सी देखने लगी।

टी.टी केयरटेकर को कुछ–कुछ समझाने लगा–यात्रियों के साथ कैसे व्यवहार करना चाहिए, हर यात्री अपराधी नहीं होता। भीड़ सुनने लगी। मैं धीरे से वहाँ से खिसक ली।

महिला प्रतीक्षालय में अब बैठने का मन नहीं हुआ। भीतर जाकर अपना बैग लिया और इधर–उधर बैठने की जगह तलाशने लगी। फिर सोचा, जिस मंदिर–दर्शन को लेकर इतना बवाल हुआ है, सो दर्शन कर ही लूँ। बैग कंधे पर लटकाये स्टेशन से बाहर आई कि कुछ ही दूरी पर एक टेलीफोन बुथ दिखा। सोचा, पहले डॉक्टर शाहदा हसन और नसीमा दीदी से बात कर ही लूँ। दस बजे हैं, अभी सोई नहीं होगी। बूथ में गई। लाईन में लगी। नंबर आया। नंबर नहीं लग रहा था, न डॉक्टर शाहदा हसन का, न नसीमा दीदी का। लाइन में खड़े लोग बेचैन होने लगे। सो पूर्णिमा को ही नंबर लगा दिया। बताया–मगध तो सुबह आएगी। मेरा तो यहाँ प्रतीक्षालय की केयरटेकर से झंझट भी हो गया। वह कहने लगी–आप सीधे घर आ जाइए। आराम कीजिए। सबेरे तड़के चले जाइएगा। मैं बोली–मैं दर्शन करके आ रही हूँ।

मैं बूथ से बाहर निकली। मंदिर गई। लाईन में लगी। दर्शन किया। हे बजरंगबली महाराज! इज्जत बचा लेना।' प्रार्थना सुनाकर बाहर आई। चप्पल पहनने लगी। चप्पल पहनकर सिर उठाकर देखा तो लगा कोई दो आदमी मेरी तरफ गौर से देख रहे हैं। नजर मिलते ही उन्होंने मुझे प्रणाम किया। आदतन मैंने भी कर दिया।

मैं रिक्शे में बैठी। रिक्शेवाले को पता बताया। रिक्शा चलने लगा कि लगा कोई मेरा पीछा कर रहा है। मैंने पीछे पलटकर देखा, वे दो ही थे स्कूटर पर। कुछ ही दूर के बाद उन्होंने स्कूटर ठीक रिक्शा के सामने ला दिया, बोले–''मैडम! डेरा ही न।'' मेरे मुँह से निकल गया–हाँ। वे रिक्शे के साथ–साथ चलने लगे। अब मुझे होश आया। जोर से डाँटी–कौन हैं आपलोग पीछा करनेवाले। डाँट सुनते ही उन्होंने स्कूटर तेज कर आगे बढ़ा दिया। मैं रिक्शेवाले से बोली–''भैया! ये लोग मेरा पीछा कर रहे हैं। आप रिक्शा किसी दूसरी रास्ते से ले चलो। रिक्शावाले ने रिक्शा मोड़ा और तेजी से भगाये ले

गया।

घर पहुँची। मेरी जान में जान आई। पूर्णिमा सामने खड़ी थी। मेरी पीठ पर हाथ रखकर भीतर ले चली। कहने लगी–कुछ खा लीजिए। फिर आराम से सोइये। वहाँ कहाँ वैसे हड़बोंग में रात गुजारती।

खाने के लिए मैंने मना किया। पूर्णिमा दूध में हार्लिक्स बनाकर ले आई। मैंने पी लिया। बहुत अच्छा लगने लगा। मेरा बिस्तर बच्चों के कमरे में ही लगा दिया गया। बच्चे सो चुके थे। अपने बिस्तर पर मैं लैट गई। पूर्णिमा ने लाइट बुझाकर जीरो पावर का बल्ब जला दिया। मुझे गुड नाईट कहा और अपने शयनकक्ष में चली गई।

सारी रात नींद नहीं आई। सोचती रही, वे कौन लोग थे, जो मेरा पीछा कर रहे थे। अब ध्यान आया–अरे, वे तो मेरे पति के अधीनस्थ कर्मचारी थे, कई बार घर आये थे। कभी कोई फाइल लेने या अपने बॉस से मिलने। वे अचानक इतनी रात को कैसे पहुँच गये। मंदिर से मेरे निकलते ही। जरूर मेरे पति से उसने कहा होगा। मगर मेरे पति को कैसे खबर हो गयी। इस पति नाम के पिशाच ने मेरी क्या दुर्गति कर दी है। आज अपना इतना सुंदर घर रहते हुए भी मैं पड़ी हूँ दूसरों के घर में। कुछ ही फासले पर तो है मेरा प्यारा घर। घर फिर मेरी आँखों के आगे झूलने लगा–वह बैठक, वह शयनकक्ष, वह पूजाकक्ष जहाँ मैं घंटों प्रार्थना करती थी, वह किचन, वह...। वह कमीना पति न हो तो वह वह घर स्वर्ग। उसका रोआँ–रोआँ मुझपर प्रेम बरसाता था। उसे जरूर पता चल गया होगा मैं यहीं कहीं पास ही में पड़ी हूँ। जरूर सोच रहा होगा। अपने आगोश में लेने के लिए तरस रहा होगा। जाऊँ मैं भागकर। जाऊँगी तो वही कमीना दरवाजा खोलेगा। उसकी तरफ बिना देखे भीतर समा जाऊँगी। अहा...मेरा स्वर्ग। सारी रात मैं बौराती पड़ी रही।

दीवाल की घड़ी ने पाँच बजाए। उठ बैठी। बाथरूम टॉयलेट से निवृत होकर तैयार हो ली। पूर्णिमा चाय बना रही थी। बावरी सी मैं कहने लगी–पूर्णिमा! मैं एक चक्कर मारकर बाहर से अपना घर देखकर आती हूँ। क्या पता हाते के फूलों के पौधों में कोई पानी देता है या नहीं। कहीं मुरझा न गये हों मेरे प्यारे पौधे।

पूर्णिमा परेशान। बोली–कुछ लोग इस समय टहलने निकलते हैं, आपको पहचान लेंगे तो हंगामा हो जाएगा। घेरघारकर फिर उसी नरक में ले जायेंगे। आपका मन भी कच्चा हो रहा है। कितनी मुश्किल से तो निकली है। अभी फिसली तो फिर फँसी। जी कड़ा कीजिए दीदी!

जी कड़ा किया मैंने। पूर्णिमा के पति ने रिक्शा बुला दिया। अंतिम विदाई लेकर मैं रिक्शे में बैठी। रिक्शा चल पड़ा। ठंढी हवा के प्यारे–प्यारे झोंके खाते स्टेशन पहुँची। रिक्शे से उतरकर मैं पैसे देने लगी। पैसे देकर सिर उठाया कि सामने वही साक्षात् नर पिशाच, मेरा पति। साथ में तीन–चार मुस्टंडे। मेरी जान सूख गई। पति की पीठ मेरी तरफ थी। वह उन मुस्टंडों से बात कर रहा था। तत्क्षण संभाला खुद को बगल में ही एक ऑटो खड़ा था। उसकी ओट में हो ली। थरथर काँपती–'भगवती रक्षा करो।' कि तभी एक ऑटो पास ही आकर रुका। कुछ महिलाएँ उतरीं। पैसा देकर स्टेशन के भीतर जाने लगी। मैं सिर ढँककर मुँह नीचा किये उन महिलाओं के साथ–साथ जाने लगी। जैसे ही एक टी–टी .दिखा। पूछा–सर! मगध किस प्लेटफॉर्म में है।

चार पर

बचती–बचाती प्लेटफॉर्म नंबर चार पर पहुँची। कहाँ मगध, कहाँ मगध। एक ठेलेवाले से पूछा। बोला–मगध तो दो में खड़ी है।

तेजी से सीढ़ियाँ फलांगती पहुँची प्लेटफॉर्म दो पर। सामने जो गाड़ी खड़ी थी, उसी में घुस ली। भीतर जाकर पूछने लगी–भैया! ये मगध है न!

बोले–वो क्या सामने खड़ी है मगध।

एकदम उतरकर भागी। दूसरी तरफ खड़ी थी मगध। दरवाजे में काफी भीड़। ठेलठालकर भीतर घुसने लगी। लोग व्यंग्य करने लगे। मेरी तो जान पर बनी थी। परवाह नहीं की। घुसती चली गयी। आगे और आगे। एक सबसे ऊपर की बर्थ खाली दिखी। ऊपर चढ़ ली। यात्री बोले–वह बर्थ तो आरक्षित है मैडम। बोली–ठीक है भैया। जिनकी है, वह आयेंगे तो उतर जाऊँगी। अभी मेरी तबीयत ठीक नहीं लग रही है इसी से। उस ऊपरी बर्थ पर, सामने की तरफ पीठ कर घुटने मोड़कर सो गई मैं। शाल से अच्छे से अपने को ढक लिया। कलाई घड़ी देखी, अभी छः बजकर दो मिनट हुए हैं। रक्षा करो भगवती–ॐ क्रीं...क्रां...क्रीं...। कि एक किशोर आकर मेरे पावों के पास बैठ गया।

आरंभिक हड़बोंग के बाद अब डिब्बा शांत हो चला था। तभी लगा कि डिब्बे में कुछ लोग घुस आए हैं। स्पष्ट आवाज सुनाई दे रही थी–क्या आपलोग इस महिला को देखे हैं। शायद फोटो दिखायी जा रही थी। कहा जा रहा था–बिचारी को दिमाग सही नहीं है। हमलोगों के साथ ही थी। इधर–उधर कहीं खो गई है। अक्सर ऐसे ही कहीं भी चल देती है। उसका पति बेचारा बहुत परेशान है।

मेरी जान सूख गई। खतरे की घंटियाँ जोरों से बजने लगीं। साथ ही मन ही मन चलता भगवती जाप भी। अब वे मेरे नीचे के बर्थ में बैठे यात्रियोंसे पूछ रहे हैं। मेरे पैताने में बैठे किशोर से भी। मेरे प्राण कंठ में। अंतरतम की पुकार भी। आश्चर्य सब लोगों ने मना कर दिया। या तो हड़बोंग में मुझे किसी ने ठीक से देखा ही नहीं था। या मेरी फोटो ही कोई ऐसी रही हो जो मेरे वर्तमान हुलिये से न मिल रही हो या फिर भगवती की कृपा।

तलाशते हुए दूसरे डिब्बे में चले गये। मेरी निगाह लगातार कलाई घड़ी में काँटा कितने धीरे–धीरे चल रहा है, अभी तो सवा छः ही हुआ है। हाँ अब हुआ छह सात, छह आठ, छह दस, बढ़ो काँटे प्यारे। मेरी जान बचाओ। आँखें काँटे पर। मन भगवती जप पर, कि सच में काँटा छह तीस पर। क्या सच में छह तीस! मैं आँखें गड़ाकर देखने लगी कि लगा, गाड़ी हिली। मेरा दिल धड़का। हिली ही नहीं, चलने लगी। चलने ही नहीं लगी, तेज हो गयी। मेरा दिल बल्लियों उछलने लगा। पूरे शरीर में खुशी की प्यारी लहर। मैं उठकर बैठ गयी। नीचे देखने लगी। सब कुछ सामान्य दिखा। जरूर मुझे भगवती ने बचा लिया।

आगे की यात्रा आरामदायी रही। कितने बरस बीत गये। आज मैं उस मुकाम पर पहुँच चुकी हूँ, जहाँ मेरे मुक्त जीवन की खुशियाँ हैं। उपलब्धियाँ हैं। सम्मान है। मगर एक प्रश्न मुझे अक्सर परेशान करता रहता है, उस रात मेरे मंदिर से निकलते ही मेरे पति के गुर्गे कैसे मेरी फिराक में खड़े मिले! उन्हें भेजा किसने?मेरे पति ने। तो फिर मेरे पति को बताया किसने?फिर पूर्णिमा के घर रात बिताकर मैं तड़के स्टेशन पहुँच रही हूँ, स्टेशन में साक्षात् मेरा दुष्ट पति ही खड़ा मिलता है, उन दबंगों के साथ। आखिर उस दुष्ट को खबर किसने दी?किसने?किसने?क्या आपको समझ आ रहा है खबर किसने की?

कहानी

विद्यारम्भ

श्रीनाथ
वृन्दावन गाजोनी
लखनऊ (उ.प्र.)

सुदीप लंच–केबिन में था, जब उसे मीता का संदेश मिला। इस समय मेन एक्सचेंज बंद हो जाने पर रिसेप्शन का फोन ही काम आता है। काउंटर पर थिरकती जुली की चंचल जिज्ञासा को अपेक्षित स्मिति के साथ शांत करके वापस लौटते समय सुदीप लगभग घिसट रहा था। अचानक उसे लगा, जैसे वह बूढ़ा हो चला है। सुबह–शाम की सैर, बागवानी, संगीत और साहित्यानुराग–सभी कुछ न जाने कब घड़ी के साथ दौड़ लगाने में छूट गया था। मीटिंग–कॉन्फ्रेंस के सिलसिले...काफी वाइन सिगरेट की दौर...ऊँचे और खुले समाज में इनके बिना गुजारा नहीं। समृद्धि और शक्ति की चूहादौड़ जीतने के प्रतिफल में चूहापन ही हाथ आया है उसके।

दुबारा लंचबॉक्स खोलते समय सुदीप को घर से मिले सुसंवाद के साथ अपना कर्तव्य याद आया, तीन वर्षीय सौरभ का 'सेंट थॉमस कान्वेंट' की लकी लिस्ट में नाम आ गया है। इंटरव्यू के पहले उसकी जुगाड़–पैरवी में जुटना होगा। ''आपके कलीग गुप्ता जी के साढू भाई बड़ी पहुँचवाले हैं। नीलिमा दीदी ने बताया कि उन्हीं का सोर्स।'' मीता ने फोन पर इशारा किया था। अब उस बेचारी को क्या पता की कलीग महाशय उस सोर्स पर खुद घात लगाए बैठे हैं अपने भतीजे को भरती करवाने के लिए। सुदीप विचलित हो उठा और अनमनेपन से लंच निपटाने लगा।

ऑफिस में विनोद प्रसंगों और ठहाकों के सिलसिले थे। सुदीप को उदास देख गुप्ता ने पूछा–''क्या बात है, कोई परेशानी?'' सुदीप ने सिर हिलाया–''कुछ नहीं, थकान लग रही है।'' गुप्ता की भेदी निगाह को भरमाने के यत्न में उसने जोड़ा, ''दरअसल मीता अपनी सहेली के एडमिशन के लिए परेशान थी, उसी ने बताया कि हो गया चीन्टेल्स में।

कांग्रैट्स! गुप्ता ने भावहीन बधाई दी और सुदीप पर टोही नजर जमाए रखकर कहा, ''तो शुरू हो गया एडमिशन का यानी पेरेन्ट्स की मुसीबतों का मौसम, आजकल संतान को जन्म देना आसान है, लेकिन उसके अच्छे स्कूल में भरती करने के लिए सोर्स ढूँढ़ना और टेस्ट पास करवाना।...''

सुदीप कुछ बोले कि गुप्ता की व्यथा–कथा शुरू कर दी–''दूर की बात नहीं, अपने सगे भतीजे का हल सुना रहा हूँ। अभी कुल ढाई साल के हुए हैं राजकुमार, लेकिन उनके माँ बाप ने दिमाग पंक्चर कर रखा है एडमिशन के लिए और वह भी 'बुडबइन' या 'पेटल्स' में। सच सुदीप भाई! मैं बड़ी मुसीबत में हूँ, किधर जाऊँ? कुछ कहकर गुप्ता ने उसे चोर नजर से देखा, फिर कागज पत्रों में उलझने से पहले यों ही कहा–''अरे, हाँ... याद आया... तुम्हारे बेटे का क्या हुआ, बात बनी या नहीं...?''

''नहीं।'' सुदीप ने बंजर में दूब जमने की अपेक्षा के साथ अपनी मनोदशा प्रकट की। ''मैं तो हार मान बैठा हूँ भाई। जबतक किसी अच्छे पब्लिक स्कूल में दाखिल कराने की लियाकत न हो, पेरेंट्स के बच्चे पैदा करने की बात सोचनी ही नहीं चाहिए।''

''वेल सेड!'' गुप्ता ने मेज थपककर कहा, ''आज घर–घर में जो टेंशन और फ्रसट्रेशन है, उसे देखते हुए यह ख्याल कुछ गलत तो नहीं।''

सुदीप ने सौरभ के भविष्य के प्रति गुप्ता के जुड़ाव को जाँचने के यत्न में कुछ कहना चाहा, पर किसी की हँसने की आवाज ने उसे रोक लिया। उसने मुड़कर देखा, चीफ मैनेजर शुजाअत खाँ दरवाजे पर खड़े दोनों जेब में हाथ डाले अर्थभरी मुस्कान बिखरा रहे थे औरों के साथ सुदीप ने भी उनके स्वागत में खड़े होते हुए पूछा–''क्या बात है सर! आज इतनी हँसी...खैर तो हैं?

''बस यों ही, रोक नहीं पाया खुद को।'' खाँ साहब ने बैठने का संकेत करके, अपनी सीट लेते हुए कहा–''आपलोगों की बातें सुनकर सोचा कि कुछ दिल की बातें भी कर लूँ।''

''वेलकम सर!'' समवेत आग्रह किया गया। सुदीप ने उत्सुक दृष्टि से खाँ साहब को देखा। गुप्ता भी कागजों को परे हटाकर सचेष्ट हुआ।

''बात कुछ खास नहीं'' खाँ साहब ने बिना किसी भूमिका के कहा–''बस एक सवाल करना चाहता हूँ आप सभी लोगों से?''

सभी की जिज्ञासु दृष्टि खाँ साहब के विचार–आवेशित मुख पर स्थिर हुई–''देखिए, मैं सिर्फ यह जानना चाहता हूँ कि आपमें से कितने लोग पब्लिक स्कूलों से निकलकर यहाँ तक आए हैं?''

केबिन की फ़िज़ा कहकहों में गूंज उठी, कोई कुछ पलों के बाद गुप्ता ने डोर थाम ली–''आपका इशारा समझ गया जनाब, लेकिन गुस्ताखी माफ, आज इतने सालों बाद यहाँ सवाल बेमानी हो चुका है खाँ साहब! सभी कुछ तो बदल चुका है–आज स्कूलों की दुनिया, पढ़ने–पढ़ाने का मकसद, गुरु–शिष्य के संबंध... लेकिन एक बात है जनाब, उस वक्त भी माँ–बाप अपने बच्चों की अच्छी पढ़ाई के लिए हजार मुसीबतें झेलते थे।

''दुरुस्त फरमाते हैं आप मिस्टर गुप्ता।'' खाँ साहब का स्वर कुछ तीखा था–''लेकिन क्या इस वजह से हमारे आपके पेरेन्ट्स ने हमें पैदा करने में शर्म महसूस की होगी?''

सुदीप के कान गर्म हो गये। सवाल ने उसे बेचैन कर दिया था। बाकी लोग भी उलझ गये थे। कुछ देर की चुप्पी के बाद माहौल सरगर्म हो चला था।

सुदीप ने शुजाअत खाँ के जीवन को बहुत निकटता से जाना था। उनकी पैदाइश–परवरिश हैदराबाद के एक सुशिक्षित परिवार में और इंजीनियरिंग की पढ़ाई विदेश में हुई थी। तेलगू और अंग्रेजी की तरह ही उर्दू और हिन्दी पर उन्हें समान अधिकार था। उनके व्यवहार की सहजता, निरभिमानता और जीवंतता सभी को खिंचती थी।

इस समय भी खाँ साहब के मुख पर वही सौम्य सहजता मुखर थी, अपनी सदाबहार मुस्कान बिखराते हुए उन्होंने अपना मन्तव्य रखा–''जहाँ तक मेरा सवाल है, मुझे सारी जुबानें अपनी लगती हैं। इन्हीं को बोलते–सुनते मैं बड़ा हुआ और इन्हीं के साथ कूद पड़ा जीवन संग्राम में। जी हाँ...अंग्रेजी भी खूब पढ़ी मैंने, तेलगू, उर्दू और हिन्दी के साथ–साथ खूब शैर और दिवानगी के साथ, लेकिन दोस्तो! मेरे मन में इस बात को लेकर कभी गाँठ नहीं पड़ी की मुझे किसी नामी पब्लिक स्कूल में क्यों नहीं पढ़ाया गया और न तेलगू माध्यम से विद्यालय का छात्र होने पर कभी हीनता अनुभव की मैंने, ''लेकिन आज....।'' खाँ साहब कुछ ठहरे, फिर गंभीर होकर बोले,''लेकिन आज मैं अपने पाखंडी और नकलची समाज के बीच खुद को बहुत अकेला और अजनबी महसूस करता हूँ।''

सन्नाटा–सा खिंच गया सभी के बीच। सुदीप साँस साधकर एक–एक शब्द सुन रहा था। बहुत ऊँचे अधिकारी है शुजाअत खाँ। इस स्तर के व्यक्ति अपने अधीनस्थों से अधिक बात नहीं करते, समूह में तो कभी नहीं और एक अभिजात दूरी बनाए रखते हैं। पन्द्रह वर्षों की अवधि में इतनी बुलंदी

छू लेनेवाले इस सर्वप्रिय एक्जीक्यूटिव ने आखिर 'देशी' बने रहकर आत्मनिर्वासन क्यों चुना,सुदीप मन को बहुत मथने पर भी समझ नहीं पाता।

''खाँ साहब, हालात के इस बेढंगेपन और उलझाव को जमाने की तेज रफ्तार ने पैदा किया है।'' गुप्ता ने अपना नजरिया जकड़कर रखा था–''जीवन की छोटी सी सुविधा के लिए हर तरफ जबर्दस्त कम्पटीशन और छीनाझपटी मची हुई है। अच्छी स्कूलिंग के लिए दौड़भाग भी बदलाव की तेज रफ्तार की देन है। हर कोई सोचता है कि कान्वेंट या पब्लिक स्कूल में पढ़े बिना उसकी संतान का भविष्य कहीं नहीं है–न सर्विस, न बिजनेस और न ही मॅट्रिमोनिअल्स में। हर पढ़े–अनपढ़, अमीर–गरीब, हर जाति–धर्म के माँ–बाप की यही सोच है, भले ही आप उसे पाखंडी या नकलची सोच कह लें, लेकिन सौ में नब्बे लोग इसी प्रैक्टिकल और मॉडर्न सोच पर अमल कर रहे हैं। कहते–कहते गुप्ता का चेहरा तमतमा उठा। उसका शरीर आवेश से थरथरा रहा था।

उसकी मुद्राओं को अविचलित भाव से निरखकर शुजाअत खाँ ने उसे संकेत से शांत किया, फिर मुस्कराकर कहा–'सॉरी, मिस्टर गुप्ता, जिसे प्रैक्टिकल और मॉडर्न सोचा–समझा जाता है, वह न कभी हमारे समय के बच्चों को अच्छे जीवन या भविष्य की गारंटी देती थी और न वह आज दे पा रही है। मेहनती और होनहार बच्चे, हर स्कूल और मीडियम के प्रतिभावान बच्चे उस दौर में अपनी मंजिल पा लेते थे और आज भी इतनी भीड़ को लाँघकर अपनी जगह बना रहे हैं।'' आपने मन्तव्य की प्रतिक्रिया जाँचने के लिए शुजाअत खाँ ठहरे, फिर गुप्ता पर आश्वस्तिपूर्ण दृष्टि टिकाकर बोले–'देखिए न, अपनी इस शानदार कंपनी में आखिर आप, मैं, सुदीप.... और यहाँ मौजूद ज्यादातर लोग अनजान से स्कूलों से निकलकर यहाँ तक आ पहुँचे की नहीं! खैर यह मेरा नजरिया है दोस्तो! ओके। इतना दिलचस्प मौका देने के लिए शुक्रिया...फिर मिलेंगे, कभी...।''

खाँ साहब के जाने के बाद सारी सक्रियता और व्यस्तता के बीच सुदीप के मन में सोच की लहरें उमड़ती रहीं। यादों के झोंके उसे अपने बचपन की ओर उड़ा ले जाते रहे। शहर की घनी, घुटन और शोर भरी बस्ती में रहते हुए उसे ज्ञान के लिए अद्‌भुत दीपस्तंभ का संयोग मिला, वह नेवटिया धर्मशाला के चार कमरों में चलनेवाली 'अभ्युदय पाठशाला' थी, जिसे 'किराना सेवा समिति' अपने धर्मादा खाते से चलाती थी। निर्धन हो या धनी, हर एक के लिए पाठशाला के द्वार खुले थे। आगे की शिक्षा मिली विद्यानिकेतन इंटर कॉलेज में, जिसके प्रति क्राइस्टचर्च डिग्री कॉलेज के प्रिंसिपल मिस्टर डेविड अब्राहम के उद्‌गार थे–''सो हमबूल, बट इन्केडीबुल।' (अत्यन्त विनम्र, किन्तु अतुलनीय।) सच कहते थे मिस्टर अब्राह्म, देश और प्रदेश को अनगिनत प्रशासनिक अधिकारी, डॉक्टर, इंजीनियर और शिक्षाविद् दिये उस गौरवशाली संस्थान ने, सुदीप याद करता रहा उन दिनों को, जब विद्यानिकेतन का छात्र होने का गर्व उसे अभावों, उपेक्षा और अकेलेपन की पीड़ा सहने की शक्ति देता था।

सुदीप के मन में एक ओर उस समृद्ध विद्यार्थी जीवन की स्मृतियाँ घुमड़ रही थीं, दूसरी ओर गुप्ता के प्रतिवाद की गूँज हलचल मचा रही थी।

तीन साल का सौरभ मस्त जीव है, खेलने–खाने और शरारत करने के लिए हर पल चुस्त, अच्छी आदतें सीखने में उसका कोई जोड़ नहीं, ढेरों कहानियाँ और उनकी शिक्षाएँ याद है उसे इस छोटी–सी उम्र में उसने सारे गुण अर्जित किये हैं, उसने मेरे पड़ोसी अंकल यानी अपने कपूर बाबा से। सौरभ की तीसरी सालगिरह पर उन्होंने ही स्टील की बुक शेल्प और 'अनुपम बाल कथाओं' का पूरा सेट भेंट किया था। उनका जीवंत कथा– कथन और अभिनय सौरभ को रोमांचित किये रखता था। सौरभ की नन्हीं दुनिया बसी हुई है बुक शेल्प में, किताबें, स्कूल बैग, टिफिनबॉक्स, फ्लास्क, खिलौने और... अनगिनत अनगढ़ अद्‌भुत वस्तुओं का संसार है वह।

सारा काम निपटाकर मीता ने सौरभ के कमरे में आकर देखा–वह अपनी दुनिया सजाता संभालता सोफे पर ही लुढ़ गया था। 'वाइल्ड एनिमल्स' के फड़फड़ाते पन्ने उसकी नींद लाने की राह देख रहे थे। उनका सामान सहेजकर और उसे ठीक से सुलाकर मीता ने सोने की तैयारी की। बेड के अपने हिस्से में सुदीप अपनी 'आउटलुक' के साथ रमा हुआ था। मीता ने 'गुडनाइट' कहकर अनुमति ली।

कुछ देर बाद सुदीप ने यों ही पलटकर देखा–मीता कनपटी से हथेली सटाकर पंखे को एकटक ताक रही थी।''क्या बात है देवीजी! सुदीप ने पत्रिका छोर से मीता को झिझोड़ा 'एडमिशन की चिंता ने पिछा नहीं छोड़ा अबतक?''

'हाँ' कहकर गहरी साँस भरी मीता ने–''होगा ही नहीं, बस यही सवाल जान खाए जा रहा है सुबह से...नीलिमा दी की बात सुनकर लगता है कि सभी कुछ इतना आसान नहीं होगा। बड़ी भागदौड़ करनी पड़ेगी।''''क्यों..आखिर कहा क्या उन्होंने?''

''कह रही थी कि सेंट फ्रांसिस और गुरुहरराय में सोर्स बिल्कुल नहीं चलेगा। लकी लिस्ट वाले बच्चे का टेस्ट होगा, मेरिट लिस्ट बनेगी। दोनों जगह साठ–साठ सीटें हैं और हर सीट के लिए पचास बच्चे लाइन में हैं।''

'हे भगवान!' सुदीप चिहुँककर बाला–''मैं तो समझा था कि नीलिमा दी के रहते...।''''नहीं, टेस्ट क्लियर किये बिना कहीं कुछ नहीं...।'' कहते हुए मीता का कंठ भर आया। सुदीप उसका कंधा थपथपाकर उठ गया। खिड़की से बाहर अंधेरे–उजाले का खेल देखने के बीच वह जैसे खुद से बात करने लगा।''अजीब तरीका है! भला इतना–सा बच्चा क्या टेस्ट देगा, क्या समझा पाएगा किसी को?कम्पटीशन, मेरिट, परसेंटेज, टेस्ट, इंटरव्यू....। कितनी–कितनी शर्तें और बंदिशें थोपी जाने लगी है प्रवेश के नाम पर, प्लेग्रुप स्तर से ही...अभी से यह हाल है तो बड़े होने तक क्या–क्या बीतेगा सौरभ पर, किन्तु उन्मुक्त, निश्चिन्त और आनंदपूर्ण पल आ पायेंगे उसके विद्यार्थी जीवन में?क्याकरूँ इस छद्म और प्रवंचना से उबरने के लिए?...क्या उपाय है, इस नागपाश को काटकर फेंकने का?'' उत्तेजना से थरथरा कर सुदीप बोल उठा और लड़खड़ाते कदमों से पलंग तक आकर निढाल हो लेट गया।

मीता आकुल हो कह उठी–''सुदीप! इतना कमजोर न करो मुझे।'' और उसके केशों में अंगुलियाँ फिराने लगी। फिर उसे संयत होते देख कॉफी बनाने उठ गयी।

सुदीप ने एक क्षण सौरभ के बेड पर नजर डाली, फिर खिड़की की तरफ करवट कर ली। साढ़े ग्यारह से ऊपर हो चले थे। सामने वाले फ्लैट की खिड़की पर लगे परदे में से पार्श्व संगीत के साथ किसी फिल्म में मार्मिक संवाद छानकर आ रहे थे। डी.वी.डी प्लेयर पर आंसू निकाल घांसू फेमली ड्रामा फुल वाल्यूम पर दूसरों की परवाह नहीं। अभी इन्हें टोक दूँ तो कल पड़ोसी मुझे समझाने आ पहुँचेंगे। हर जगह कमोबेश एक ही जीवन–दर्शन है–''मस्तराम मस्ती में आग लगे बस्ती में।' धीमी गाड़ियों और राहगीरों को डराए–गिराए बिना कार और बाइक दौड़ाने का लुत्फ ही क्या, हर कहीं शालीनता और सुव्यवस्था को रौंद डालने की परपीड़क उद्दंडता। आखिर कैसे जी पाएगी सौरभ वाली पीढ़ी इस हिंसक आपाधापी के बीच। सोचते–सोचते सुदीप का सिर दुखने लगा। स्वस्थ होने के यत्न में वह सौरभ के पास गया और सब कुछ भूलकर उसे देखने लगा। नाईटलैम्प के मृदु नीले

प्रकाश में गहरी नींद में डूबा उसका सौम्य मुख दमक रहा था। उसका माथा चूमकर उसके केश–सहलाने के साथ सुदीप आँखें मुँदकर फुसफुसाया...हे ईश्वर! इस बालक का वहीं एडमिशन करवा दो, जहाँ इसकी माँ चाहती है... कुछ चिहुँककर वह अपनी प्रार्थना के बेतुकेपन पर मुस्कुराया और अपनी जगह लौट आया।

मीता कॉफी ले आई थी। ''एक बात कहना भूल गई, उसने मग उठाकर बैठते हुए कहा–सौरभ की कोचिंग के लिए मैं गई थी किड्स केयर सेंटर, जहाँ वे लोग प्लेग्रुप टेस्ट की तैयारी करवाते हैं। वाह, क्या कोचिंग स्कूल है, टीचर्स मानो सीधे यूरोप से पढ़कर चली आ रहीं हो... और प्रिंसिपल मिसेज केलकर...वे तो अद्‌भुत है...एक मिनट रुकना जरा...अभी प्रॉस्पेक्ट्स लेकर...।''

''रहने दो, पहले मेरी बात सुनो, कहते हुए सुदीप ने मीता का कंधा दबाकर उसे बिठा लिया और अपनी सारी तड़प और विरक्ति को कॉफी के साथ घूँटता हुआ अगले कठिन पलों के लिए तैयार होने लगा। मीता की जिज्ञासु दृष्टि सुदीप के गंभीर मुख पर टिककर अपने भीतर घुमड़ती असुरक्षा और अधीरता को संभाल रही थी।

''एक बात पूछूँ मीता! सुदीप ने अपने अभीष्ट के प्रति दृढ़, किन्तु पत्नी की अतिरिक्त सक्रियता के प्रति सचेत रहकर कहा–क्या तुम मुझे अपने परिवार के तीन–चार लोगों के नाम बताओगी, जो कान्वेंट और पब्लिक स्कूलों में पढ़कर ऊँची जगहों पर पहुँचे हो?''

''क्यों भला, मीता इस झटके लिए तैयार नहीं थी।''

''क्यों क्या, मैं तुम्हें अपने उन संबंधियों के नाम बताऊँगा, जो साधारण स्कूलों में पढ़कर और तमाम कष्ट सहकर असीम ऊँचाइयों तक पहुँचे हैं।''

मीता चुप रह गयी। संकोच ने उसके होंठ सी दिये। पराभव की लज्जा ने कान लाल कर दिये। विवाह होने से पहले तक उसे खुद की विलक्षण संघर्ष–गाथाएँ याद थीं। गर्व भी होता था उसे अपने लोगों को याद करके, लेकिन अब...अब क्या हो गया उसे?प्रतिष्ठा और स्पर्धा की आड़ लेकर वह क्यों उन प्रकाशित दृष्टांतों को अपनी स्मृति और प्रेरणा से दूर रखना चाहती है और उन संघर्ष–गाथाओं की यथार्थता के प्रति अपरिचित और रुचिकर भाव बनाए रखती है...क्यों, आखिर क्यों?उलझन और दुविधा में घिरी वह सुदीप के कंधे पर ढुलक पड़ी और सिसकियों के बीच अपनी कामनाओं का खंड–खंड बिखरता अनुभव करती रही।

''यह क्या बचपना है?''सुदीप ने संभालते हुए कहा–''भूलना ही चाहती हो तो भूल जाओ उन मूल्यवान दिनों को और उन संघर्षशील प्रतिभाओं को...लेकिन मीता! आज इन चुभती चिढ़ाती स्थितियों के बीच भी मैं उन लोगों को भुला नहीं पाता, बल्कि हरघड़ी अपनी स्मृतियों के संग रहना चाहता हूँ और मनीष भाई को तो मैं चाहकर भी नहीं भूल पाऊँगा। उनका बचपन, उनका जीवन–संघर्ष, उनकी उपलब्धियाँ और उनकी कीर्ति...आज भी साधनहीन विद्यार्थियों को दिशा और शक्ति देने में समर्थ है।

मनीष भाई के जिक्र ने मीता को संभाल लिया। वह सुचित होकर सुदीप के सामने बैठ गयी और कुछ याद करती हुई बोली–''कौन मनीष भाई, वो इलाहाबाद वाले ताऊजी के आई.ए.एस बेटे?''

''हाँ, वही मनीष भाई।'' सुदीप उत्साहित और भावमग्न होकर सुपरिचित कथा दुहराने लगा–अतुलनीय थी उनकी प्रतिभा, अनोखा था उनका जीवन, अकल्पनीय था उनका संघर्ष। ताऊ जी तो दमे का शिकार होकर तभी चल बसे थे। जब मनीष भाई बी.ए. के अंतिम वर्ष में थे। घनी और शोरभरी बस्ती में रहकर झगड़ालू पड़ोसियों के बीच बत्ती–पंखे के बिना सिविल सर्विस की तैयारी करने के साथ उन्हें ताईजी की गठिया का इलाज करवाना था और पाँच भाई–बहनों का भविष्य भी सँवारना था। उन्होंने ट्यूशन करते हुए सबके लिए सभी कुछ किया। आल इंडिया थर्ड रैंक आई.ए.एस. बनकर उन्होंने महत्वपूर्ण दायित्व निभाया। मुद्राकोष के डायरेक्टर, फाइनेंस सेक्रेटरी, रिजर्व बैंक के गर्वनर और प्रधानमंत्री कार्यालय में मुख्य सचिव का पद संभालते हुए।''

मीता विमुग्ध होकर सुन रही थी। कितनी बार सुनी हुई मनीष–गाथा, और जानती हो मीता! भाई साहब की शुद्ध और धाराप्रवाह भाषाएँ लिखने–बोलने का ज्ञान कहाँ से आया मिला था?कहाँ से पाई उनमें सामयिक और ज्वलन्त संदर्भों की गहरी और व्यापक समझ?''

मीता की उत्सुकता को चरम पर लेकर सुदीप मौन हो गया, फिर हँसकर बोला–''विश्वास नहीं होगा तुम्हें, पर उनके आध्यापक थे 'नेशनल हैराल्ड' और 'हिन्दू' के संपादकीय, 'भवन्स जनल' और 'इलेस्ट्रेटेड वीकली' के लेख, बी.बी.सी., ऑल इंडिया रेडियो और आकाशवाणी के समाचारवाचक...कितने माध्यम रहे होंगे ज्ञानसंग्रह के...।

''हाँ, सुपर जीनियस थे वे तो...वह बीती बात हो चली। आज भी यू.पी.बोर्ड के जेईई, सीपीएमटी या सीडीएस के ज्यादा रैंकर्स कमोबेश इतने ही गुणी साधक हैं। उनके जीवन संघर्षों और साधनों–सुविधाओं की सच्चाई जानने चलो तो सिर चकरा जाए। कुछ बच्चों ने तो सचमुच असंभव को संभव कर दिखाया है। कृषि विश्वविद्यालय की सुरक्षाकर्मी का बेटा अंशुमन आई.आई.टी. का गोल्डमेडिलिस्ट बना। एक साथ पाँच मेडिकल्स परीक्षाओं में सफल हुई थी साबुन के फुटकर व्यापारी के दुबली–सी बेटी श्वेता...और वह कैसा सबस्टेशन की रोशनी में पढ़कर वायुसेना का पायलट बननेवाला दीपक एक मामूली से बाबू का बेटा था।'' कहकर सुदीप कुछ ठहरा, फिर विहँसकर मीता से बोला–''कहिए देवीजी!इतने उदाहरण काफी हैं या...!''

मीता की आँखें पलभर को चमककर सामान्य हो गयी। सुदीप के अभीष्ट और अपने निर्णय के बीच उसे बहुत बड़ा फासला नजर आ रहा था। गहरी साँस लेकर उसने कहा–''आपकी बात काट नहीं रही हूँ, लेकिन सभी बच्चे मनीष भाई साहब या आज के कुछ बच्चों जैसे जीनियस नहीं हो सकते... हो भी तो उनकी तरह अभावों और कष्टों के बीच रहकर संघर्ष नहीं कर सकते। फिर अपना सौरभ हमलोगों जैसा ही हो जाएगा, बस।'' स्वप्नभंग की आहट पाते ही वह फलभर असहज हो उठी, फिर जैसे चुनौती के भाव में बोल पड़ी–''जो भी हो, मैं सब करूँगी, उसकी अच्छी स्कूलिंग के लिए सब करूँगी–चाहे जिसका सोर्स लगाना पड़े, कितना भी खर्चा आए, मैं हार नहीं मानूँगी।''

''ठीक है, ठीक है, सब कुछ करना सुदीप ने मीता की भावुक उमंग और उसकी असहज मनोदशा के प्रति संयम रहकर कहा–''लेकिन पहले सौरभ के भीतर ज्ञानार्जन की भूख जगानी होगी, कठोर साधना करने की शक्ति।''

सहसा दोनों ठिठककर चुप हो गये। सौरभ कुनमुनाकर जाग गया था और पलंग पर बैठकर विस्मय से ताक रहा था। जल्दी से नीचे उतरकर लड़खड़ाकर मीता के पास आते हुए उसने मम्मी–मम्मी कहा और उसके गले से लिपटकर कहा–''सॉरी मम्मी! डेज फिर भूल गया... संडे, मंडे, फ्राइडे... बस यही याद हैं और वो भी याद है मम्मी एसयून सन मीन्स सूरज और एसओन मीन्स बेटा...ठीक है न मम्मी?''

मीता कुछ कहे, तभी सुदीप ने सौरभ को खींचकर लिपटा लिया। सौरभ ने दूर छिटककर कहा–पापा सुनो–लोट्स इज पिंक एंड ग्रास इज ग्रीन. ..राइट?'' सुदीप ने हँसकर सिर हिलाते ही वह उछल पड़ा–देखा मैं सब जानता हूँ, अब तो मैम बोलेंगी ओके...गुडबाय...वेरी फाइन!'' फिर वह ताली बजाकर नाचने लगा। सुदीप ने पूछा, ''क्या आप सोते–सोते पढ़ाई कर रहे थे?''

नहीं पापा, मैं तो टेस्ट दे रहा था–सेंट जोसेफ में..., मिल्टन में, लिंकन में....हर जगह...और अभी–अभी तो चिन्टेल्स की मैम से...।''

सौरभ का नींद भरा, भोला और गंभीर मुख देख मीता का कंठ उमड़ आया। खौलन मचने लगी उसके भीतर। आशंका और घबराहट के मारे थरथर कांपने लगा उसका शरीर। क्षोभ और ग्लानि में भरकर उसने खिड़की की ओर मुँह कर लिया। उसकी मनोदशा से विचलित सुदीप ने सौरभ को गोद में उठाया और उसे बाथरूम की ओर ले गया। उसके मुख पर शीतल जल के छींटे मारकर सुदीप ने उसके स्नायु शांत किये। कभी सौरभ की दादी भी यही करती थी सुदीप के लिए। वे अब लखनऊ में रहती हैं छोटे भाई प्रदीप के साथ। हर महीने जितने रुपये वह भेजता है, वे पूरे नहीं पड़ते उन्हें, पर क्या करे वह भी, वैसे ही न्यूनतम स्तर बनाए रखना दूभर होते जा रहा है।

''पापा! मुझे डर लगता है।'' सौरभ पलंग पर लेटने के बजाय उससे लिपट गया–''कहीं मैम फेल तो नहीं करेंगी...गेट आउट तो नहीं करेंगी... नहीं करेंगी न?''

''नहीं, कोई गेट आउट नहीं करेगा आपको।'' सौरभ को थपककर सुदीप ने समझाया–''बस जो मम्मी ने याद कराया है, वही बोल देना, घबराना नहीं, आराम से...ठीक है?''

''ठीक है पापा...अभी सुनाऊँ आपको?'' कहकर सौरभ जैसे मेम के सामने खड़े होने का यत्न करने लगा।

''नहीं बेटा! अब आप जाकर सो जाओ अपनी मम्मी के पास।'' सुदीप ने उसे प्यार से भीचकर कहा–''गुडबाय, डरना नहीं। जैसे सनी देओल ढिशुम–ढिशुम करता है न, वैसे आप भी मैम को फटाफट जवाब देना।''

सौरभ पर 'कलर' का भूत चढ़ा था–''लोट्स इज पिंक, टोमेटो इज रेड, बनाना इस येलो...वाटर इज ब्ल्यू'' वह रटता गाता हुआ अपनी मम्मी के पास चल दिया।

भीतर किचेन से लगे हुए कमरे में मीता फर्श पर सिकुड़ी हुई सो रही थी। मुख पर चिंता और आशंका के भाव मुखर थे। सुदीप ने धीमे से पुकारा ''मीता...मीता! क्या हुआ?' मीता निश्चल लेटी थी। उसने फिर पुकारा, लेकिन कोई आहट नहीं। सुदीप ने जल्दी से सौरभ को उसकी जगह पर लिटाकर सुला दिया। उसने एक बार फिर मीता को उठाने का यत्न किया, पर वह उसी तरह बेसुध पड़ी रही। नब्ज तेज चल रही थी। पूरा शरीर पसीने से भीग रहा था, शायद चिंता और अधीरता, बेहोशी कारण बन गये थे।

सुदीप ने बिना एक पल गँवाए डॉक्टर पद्मकांत को फोन किया। अच्छे पड़ोसी और पारिवारिक डॉक्टर सही, लेकिन इतनी रात गये उन जैसे बुजुर्ग को तंग करना अन्यया लगा उसे, फिर भी मीता के अति भावुक और उत्तेजक स्वभाव के चलते वह कोई जोखिम नहीं उठाना चाहता था।

जाँच करने के बीच ही मीता को होश आने लगा। किसी गहरे स्वप्न में डूबी हुई वह बुदबुदा रही थी–''आय एश्योर यु मैम, माय सन नोज अ लॉट आव थिंक्स...यस... ही इज नर्वस अ'बिट ...बट यु वुड फाइंड ही इज आ जेम. ..प्लीज एडमिन हिम, प्रॉमिस?और वह अेचत हो गयी.।

''ओह...एडमिशन फोबिया!'' डॉ.पद्मकांत मुस्कराकर बोले–''उसी ने यह हालत की है इनकी, बच्चे का टेस्ट–इंटरव्यू कहाँ है?''

''सेंट फ्रांसिस में अगले हफ्ते किसी दिन...।'' सुदीप ने मीता पर नजर जमाए रखकर अनमनेपन से बताया–''कोशिश तो कई जगह चल रही है।''

''हूँ, वही बात है।'' डॉक्टर साहब ने जाँच पूरी करके पैड निकालते हुए कहा–''हाइपरटेंशन एंड एंग्जायटी...हैमोग्लोबीन भी कम करता है। अभी इंजेक्शन दिये जा रहा हूँ, सुबह यह कैप्स्यूल्स और टॉनिक मँगवा लेना। कुछ दिन लगेंगे नॉर्मल होने में। लेकिन ध्यान रहे–न टेंशन, नो एगजरशन... ठीक?''

चलने से पहले डॉ.पद्मकांत ठिठके, फिर सुदीप को लक्ष्य कर बोले–''भाई ताज्जुब है, इतने जागरुक और तरक्की पसंद लोगों के शहर में इतने कम स्वदेशी स्कूल क्यों है?कम से कम फीस में जो सभी बेहतरीन स्कूलिंग दे सके, ऐसे जनता स्वेदशी स्कूलों की जरूरत है, बहुत बड़े पैमाने पर, लेकिन इतने बड़े शहर में इस मुद्दे को लेकर कहीं कोई आवाज नहीं, कोई मुहिम नहीं...बड़ी हैरत होती है, क्या कहते हैं आप?''

इतनी रात में और इतने पेचीदा सवाल पर बहस से बचने के लिए सुदीप ने कह दिया–''सोचा तो बहुत है डॉक्टर साहब, लोगों से बात भी किया करता हूँ इस बारे में, लेकिन एक मेरे या कुछ लोगों के सोचने से...?'' तभी डॉक्टर साहब का सहायक उन्हें लेने आ पहुँचा। उसे रुकने का संकेत देकर डॉक्टर साहब ने कहा–''मिस्टर भार्गव! एक बात कहे जाता हूँ आपसे, स्कूल के लेवल और परसेंटेज वगैरह से तालीन का कोई खास ताल्लुक नहीं होता। इस बच्चे के बारे में खुले दिमाग से और खूब सोच–समझकर फैसला करना। वह जिंदगी में कुछ बन सके, यह जरूरी है, लेकिन वह अच्छा शहरी और नेक इंसान भी बन सके, यह भी जरूरी है...ओके...आल दि बेस्ट।'

डॉक्टर साहब के सीढ़ियाँ उतरते ही सुदीप को झटका लगा, जैसे वह गहरी नींद से जाग उठा हो। डॉक्टर साहब ने उसे मजबूत जमीन पर खड़ा कर दिया था। दरवाजे बंद करे वह बेडरूम में आया। सवा एक बज रहे थे। कॉफी की तलब लगी उसे। किचेन में जाने से पहले उसने माँ–बेटे पर नजर डाली। सौरभ तकिये के नीचे हाथ रखकर गहरे सोच में डूबा सो रहा था। मीता की स्थिति और गहरी साँसें इंजेक्शन के असर की परख करा रही थी।

कॉफी लेकर सुदी बरामदे पर आ गया। ठंढी हवा के धीमे–तेज झोंके रह–रहकर शरीर को छू रहे थे। आसपास कुछ फ्लैट्स अभी तक रोशन थे। सुदीप ने सोचा–क्या पता, उन घरों में भी कुछ अबोध बालक उज्ज्वल भविष्य की तैयारी के लिए जगाए जा रहे हों। जी.के. और राइम्स की खुराक उनके गले उतारी जा रही होगी, क्या पता उन बसेरों में भी कोई भावुक माँ बेहोश हो गई हो और उसके लिए डॉक्टर का इंतजाम किया जा रहा हो। डॉक्टर...हाँ, लेकिन कोई कुशल डॉक्टर ही इलाज कर पाएगा, अलग और ऊपर दिखने के इस संक्रामक रोग का। कुर्सी की पीठ पर सिर टिकाकर आँख मूंदे बैठे सुदीप की कल्पना एक विशाल अस्पताल के रूपक से जुड़ने लगी, जिसके इमरजेंसी वार्ड में मीता सरीखी अनगिनत अविवेकी महिलाएँ मूर्च्छित पड़ी थीं। सान्त्वना की नशीली दवा उनकी जड़ता और अवरोध को और भी बढ़ा जाएगी। नहीं, अब हर कोशिश करके मीता को अपने साथ ले चलना होगा। सोच और कथन को आचरण तक लाना होगा। छद्म और प्रवंचना के विषाणुओं के विरुद्ध संग्राम में अपनी जमीन पर टिके रहना होगा। उसी क्षण सुदीप ने उल्लसित मन निश्चय किया–''मीता ठीक हो जाए। फिर वह उसे साथ लेकर जाएगा विद्यानिकेतन अरुणोदय विभाग में, सौरभ का प्रवेश कराने के लिए।

कहानी

माँ

देवेन्द्र कुमार मिश्रा
मो. 9435405022

वह घर से जब भागा तो उसकी उम्र 10 वर्ष थी। माँ–बाप को बिना बताए इस उम्र में जाना, भागना ही होता है। माँ को लगा कि पिता की डाँट की वजह से भागा होगा। माँ 80 वर्ष उम्र तक जबतक बोल सकती है, अपने पति से लड़ती रही कि तुम्हारे कारण मेरा बेटा घर छोड़कर चला गया है। पिता की समझ में नहीं आया कि ऐसा उन्होंने क्या कह दिया था कि इकलौता बेटा घर छोड़कर चला गया। वे जीवनभर प्रयास करते रहे बेटे को तलाशने की। बेटे की एक फोटो थी। उन्होंने पुलिस थाने में दी। उनके बेटे की गुमशुदगी की रिपोर्ट भी लिख ली गयी। किसी दूसरे शहर से जब भी कोई गाँव आता, वे अपने बेटे के विषय में पूछते। कोई गाँव से बाहर जाता तो उसे बेटे की तस्वीर की एक कॉपी थमा देते। खुद वो भी किसी न किसी काम के बहाने कभी इस शहर कभी उस शहर जाते रहते।

चम्पक क्यों भागा?यह तो चम्पक ही जानता था। भूख, गरीबी, अशिक्षा से उबरना चाहता था वह। दिन–रात जमींदारों के खेतों में काम करने के बाद भी उसे क्या मिलता था?उसे तब बहुत बुरा लगता जब जमींदार या उसका मुनीम उसके पिता को कामचोर कहता। गंदी–गंदी गालियाँ देता। क्या यही वह जीवन भर सुनता रहेगा। एक दिन बातों ही बातों में कुछ मजदूरों को कहते सुना कि बम्बई ही एक ऐसी जगह है, जहाँ हर भूखे को रोटी, सिर छिपाने को छत और सम्मान मिलता है। वहाँ काम करनेवालों की इज्जत होती है और चम्पक उस दिन उस बम्बई की खोज में निकल पड़ा। कई बरसों बाद पिता को इस बात की जानकारी हुई कि भागनेवाले अक्सर बम्बई ही भागते हैं तो वे अपने बेटे की फोटो लेकर बम्बई भी पहुँचे। पुलिसवाले ने कहा–कब निकलवाए थे ये फोटो?'
जी दस साल पहले की है
अब आपका बेटा बीस साल का हो गया होगा, इस फोटो से कैसे पहचान होगी?
साहब हमारे पास तो यही एक फोटो है।

पुलिस अधिकारी ने कहा–'ठीक है हम कोशिश करेंगे। लेकिन बहुत मुश्किल है। यदि जीवित होगा तो कभी–न–कभी तो घर आएगा ही। यदि फिल्म में हीरो बनने निकला होगा भी आपको मालूम हो ही जाएगा।

पिता वापस आ गए, लेकिन उनका मन न लगा। उनकी पत्नी का तो रो–रोकर बुरा हाल था। ऐसे में उन्होंने गाँव छोड़कर चले जाना ही ठीक समझा। गाँव में बाप–दादों का एक टूटा फूटा मकान था। उसे बेचकर जो मिला,गाँव से शहर आ गये। एक छोटा सा कमरा किराए पर लेकर शहर में ही मजदूरी करने लगे।

माँ ने अपने दसवर्षीय बेटे की फोटे को बड़ा करवाकर शहर के रेलवे स्टेशन पर लगवा दिया। माँ की दृष्टि में उनका बेटा 10 वर्ष का ही था। नीचे ये भी लिखा था कि तलाशनेवाले को उचित इनाम दिया जाएगा। माँ जबतक जीवित रही, तबतक रोज शाम–सुबह रेलवे स्टेशन जाती कि शायद उनका बेटा लौट आए। उसको अपनी माँ की याद आए और वह रोता हुआ माँ–माँ कहता हुआ उनकी गोद में समा जाए। माँ स्टेशन पर वह फोटो भी देखती कि कहीं किसी ने निकाल तो नहीं दी। कहीं फोटो हवा–पानी में बिखर तो नहीं गई। एक बार ऐसा हुआ भी कि उनके बेटे की जगह किसी नेता की फोटो लगी थी। माँ को गुस्सा आ गया कि ऐसे में कौन देख पाएगा उनके बेटे को?उन्होंने नेता की फोटो फाड़ डाली और अपने बेटे की फोटो अच्छी तरह से चिपका दी। एक दिन पति ने कहा–''तुम क्यों परेशान होती हो। यदि आएगा तो गाँव में कोई भी बता देगा कि हम शहर में यहाँ पर रह रहे हैं।''

माँ ने कहा–''पता नहीं, कितनी दूर से आए हमारी याद में और फिर हम गाँव में न मिलें तो उसे यहाँ आने में तकलीफ न होगी। अच्छा है रेल से उतरे और जैसे ही दिखे, मैं उसे सीधा यहीं ले आऊँ। कुल जमा दो गाड़ियाँ ही तो आती हैं, उसी टाइम पर जाती हूँ। क्या अपने बेटे के लिए इतना भी नहीं कर सकती।''

माँ रोज स्टेशन जाती और गाड़ी से उतरते हुए 10 वर्ष के बच्चे को देखती रहती। लेकिन हर बार उसे निराशा ही हाथ लगती। एक दिन पति ने कहा कि मान लो, वह आ भी गया तुम उसे पहचानोगी कैसे?माँ इतना सुनकर गुस्से में आ गई। पहले जोर–जोर से चीखी फिर रोते हुए कहने लगी। 'मैं माँ हूँ। अपने बेटे को नहीं पहचानूँगी। कैसी पागलों जैसी बात कर रहे हैं आप!

अब माँ को कौन समझाए कि 10 वर्ष का बेटा अब 30 बरस का हो चुका होगा। 20 वर्ष हो गये उसे घर से भागे हुए। उसकी शक्ल, सूरत, कदकाठी सब बदल गयी होगी। हो सकता है मूँछ रख ली हो या दाढ़ी–मूँछ दोनों। क्या वह अपने झुर्रीदार माता–पिता को पहचान पाएगा। क्या वह पिता होकर अपने बेटे को पहचान पाएँगे। कभी–कभी उन्हें पुलिस अधिकारी की कही बात याद आती है कि यदि जीवित होगा तो! उसके मन में गहरी पीड़ा उठ जाती। कभी वे सोचते कि जिन्दा होता तो अंत तक आ जाता। फिर मन को समझाते कि नहीं ऐसा नहीं हो सकता। यदि कुछ हो जाता तो उन तक खबर न आती। फिर भगवान की ओर देखकर वह मन–ही–मन प्रार्थना करते कि हे ईश्वर! यदि हमारे भाग्य में पुत्रसुख नहीं है तो न सही, लेकिन वो जहाँ भी हो ठीक हो, जिन्दा हो। सही सलामत हो।

गाँव का 10 वर्षीय अनपढ़ घर से भागकर अच्छा पैसा और सम्मान की चाह में, जो एक बार घर से भागा तो भागता ही रहा। उसे तो ये भी पता नहीं था कि बम्बई है कहाँ?बस सुना था कि बढ़िया मजदूरी, रोटी, छत, सम्मान मिलता है तो खाली हाथ बिना बताए निकल गया। इस ट्रेन से उस ट्रेन में बिना टिकट चढ़ जाता। कभी पकड़े जाने पर टी.टी. ट्रेन से उतार देता, कभी रेल पुलिस एक–दो माह जेल में रहता। फिर जेल में बने साथियों के साथ निकलकर चोरी करता,छोटी–मोटी पॉकेटमारी करता। कभी पकड़ा जाता। पिटता, कभी जेल जाता। लेकिन इसमें मौज ये थी कि उसको दोनों टाइम अच्छा खाना मिलता। सोना कहीं भी हो जाता। चोरी में पैसों का बँटवारा होता तो पसंद के कपड़े, होटल में खाना। इस तरह वह बम्बई पहुँच गया। सब संगी–साथी किसी जुर्म में जेल चले गये तो वह अकेला हो गया। ऐसे में होटलों में बर्तन माँजता, मजदूरी करता, रिक्शा चलाता। ऐसे ही भटकते हुए एक दिन उसकी मुलाकात रजिया से हुई। वह अकेली थी, लेकिन इज्जत के साथ मजदूरी करती थी एक बड़े घर में। उसने चम्पक को भी मालिक के बंगले में चौकीदार की नौकरी लगवा दी। मालिक ने दोनों की शादी भी करवाई और बंगले के पीछे बने सर्वेंट क्वार्टर में एक कमरा भी दे दिया। रजिया के संपर्क में आते ही उसका भटकना, छोटे–मोटे अपराध करना, बार–बार काम बदलना सब छूट गया। दोनों पति–पत्नी ईमानदारी से अपना काम करते। अब उनके पास रहने को जगह थी। दो वक्त का भोजन था। दोनों की मिलाकर इतनी पगार थी कि वे उसमेंसे कुछ बैंक में भी जमा कर रहे थे।

एक दिन रजिया ने अपने पति से पूछा–'तुम्हारे माता–पिता कहाँ हैं, तुम कहाँ के हो?'

रजिया तो खास मुम्बई की ही थी। पत्नी की बात सुनकर चम्पक चौंक गया। उसने कहा–''तीस वर्ष हो गये अपना घर छोड़े, मुझे तो उनके बारे में कुछ भी याद नहीं। चेहरा तक नहीं। अबतक तो वे मर–खप गये होंगे।''
'जिला कौन सा है?'
'पता नहीं'
'तहसील'
'अरे, मैं 10 वर्ष का अनपढ़ क्या जानूँ। जिला, तहसील क्या होती है?हाँ, गाँव का नाम याद है। कटरा है शायद और अपना नाम भी चम्पक यादव। इसके अलावे और कुछ याद नहीं।'
'नहीं, बिल्कुल नहीं।'
'कभी याद नहीं आई घर की?'
'कभी फुर्सत ही नहीं मिली इतनी। अब तो जो हो, बस तुम ही हो, इस पूरी दुनिया में।

माँ से जबतक चलते बना, वह बराबर जाती रही और अपने चम्पक की

तलाश करती रही। एक बार तो उसे एक बच्चा चम्पक जेसा ही लगा। वह बच्चे की तरफ बेटा कहके दौड़ी। एक पागल सी औरत को अपनी तरफ दौड़ता देख बच्चा रोने लगा। तभी बच्चे की माँ ने अपने बच्चे को गोद में लेकर उसे झिड़क दिया। लोगों ने उसे पागल समझकर एक तरफ धक्का दे दिया। वह गिर गई। उसके सिर में चोट लगी। वह किसी तरह घर पहुँची और उसने जो बिस्तर पकड़ा तो उठ न सकी। बिस्तर पर पड़ी–पड़ी ही वह सोचती रहती। कल्पना में गोते लगाता कि बेटा, बहू और पोते के साथ आया है। बहू खाना बना रही है, पोता उसकी गोद में खेल रहा है। दरवाजे पर आहट होती तो वह रात के दो बजे बड़ी मुश्किल से लाठी टेककर कहती–'रुक जा, आ रही हूँ। देखो जी, चम्पक आया लगता है।' लेकिन वे सब एक माँ के ख्याल थे। उसने गरीबी सही, अपमान सहे। दो–दो दिन पेट की भूख सही, लेकिन बेटे का बिछोह हमेशा उसके दिल में दर्द पैदा करता रहा और इसी दर्द के सहारे मिलने की आस में वह 80 वर्ष तक जिंदा रही और पति को कोसती रही कि तुम्हारे कारण मेरा बेटा चला गया।

पिता को क्या कम दु:ख था। लेकिन वह चुपचाप सुनकर कोने में जाकर आँसू बहा लेते। कहाँ–कहाँ नहीं तलाशा?रिपोर्ट की बम्बई जाकर। लेकिन इतने बड़े शहर में किसी को तलाशना क्या आसान काम था?वो भी 10 वर्ष की उम्र की फोटो लेकर। बेटे के बिछोह ने उन्हें भी खोखला कर दिया था। फिर क्या वह बम्बई में था या कहीं और जिन्दा है या नहीं, क्या पता उसे कुछ याद भी है या नहीं।

तभी बम्बई में भाषा, प्रांत के झगड़े शुरू हो गये। माहौल में तनाव पैदा हो गया। मालिक ने दोनों पति–पत्नी को बुलाकर कहा–''देखो, तुमलोग कुछ समय के लिए दिल्ली चले जाओ। मेरा वहाँ भी बंगला है। मैं वहाँ के मैनेजर को पत्र लिखकर तुम्हें दे रहा हूँ। जब माहौल शांत हो जाएगा, तो बुला लूँगा।''

''लेकिन साहब मैं तो मुम्बई की हूँ'' रजिया ने कहा।

''हाँ, लेकिन तुम्हारे पति का सरनेम यादव है'' मालिक ने समझाया।

''लेकिन साब! ये तो यहीं का है। बीसियों साल के ऊपर हो गये इसे'' रजिया ने सफाई दी।

''माहौल बिगड़ने पर लोग सुनते–समझते ही कहाँ हैं। यादव है तो बिहार, यूपी का ही होगा। मैं तुम दोनों को खतरे में डालना नहीं चाहता। ये लो चिट्ठी दिल्ली का पता और ये रुपये। आराम से दिल्ली में रहना। पहुँचते ही खबर करना।

जब उन्होंने भी देखा कि चारो तरफ हिंसा, आगजनी, मारपीट मची हुई है, तो उन्होंने जाना ही उचित समझा। वे ट्रेन पर सवार हो गये। दिल्ली जानेवाली ट्रेन में मालिक उन्हें खुद छोड़ने आया था। थोड़ी देर में ट्रेन चल पड़ी। रातभर ट्रेन चलती रही। बीच–बीच में दो पाँच मिनट के लिए रुकती रही। फिर रात के 3 बजे आसपास ट्रेन एक छोटे–से स्टेशन पर रुक गयी। किसी ने बताया कि एक घंटे के लिए ट्रेन यहाँ रुकती है। यहाँ से ट्रेन का इंजन बदलता है। अन्य यात्रियों की तरह वे भी बाहर आ गये।

इस समय चम्पक की उम्र 45 वर्ष के लगभग थी। पूर्वस्मृति पूर्णत: विलुप्त हो चुकी थी। अन्य यात्रियों की तरह वे भी एक चाय के स्टाल पर चाय पीने लगे। पत्नी ने पानी की बॉटल भरी। चम्पक ने कहा–'तुम जाकर ट्रेन में बैठो। मैं अभी बाथरूम से आता हूँ। वह बाथरूम घुसने को हुआ कि एक काफी पुरानी रंगहीन, धूलधूसरित कुछ सड़ी–गली सी फोटो पर उसकी नजर पड़ी। वह बाथरूम के अंदर गया। निवृत होते हुए भी वह फोटो के विषय में सोच रहा था। वह दस वर्ष का होगा क्या, वह ऐसा ही दिखता रहा होगा। फोटो उसका ध्यान न जाने क्यों खींच रही थी?निवृत होकर बाहर आया तो उसने फोटो को ध्यान से देखा। इसके पहले भी वह गुमशुदा की ऐस कई फोटो देख चुका था। लेकिन ये फोटो उसे अपनी ओर खींच रही थी। फोटो के नीचे लिखा था, वह मिट चुका था। बस कुछ टूटे–फूटे शब्द थे, कटे–फटे से। जिसका उसने अनुमान लगाया कि जो भी इस बच्चे को ढूँढ़कर देगा, उचित इनाम दिया जाएगा। शायद किसी बड़े घर का लड़का होगा। फिर उसने उस उखड़े से रंगहीन हो चुके चित्र को बार–बार देखा और देखता रहा। लेकिन वह स्वयं को पहचान न सका। तभी रजिया ने आकर कहा–''क्या हुआ, इतनी देर क्यों लगा दी?गाड़ी छूटनेवाली है। जल्दी चलो।' वह रजिया के साथ तेजी से ट्रेन पर चढ़ गया।

''ऐसी फोटो तो हर स्टेशनों, बस अड्डों पर लगी रहती है। समाचार पत्रों में छपती है। उस अस्त–व्यस्त पुरानी फोटो को इतने ध्यान से क्यों देख रहे थे।''

''पता नहीं क्यों?'' उसने अनमने मन से कहा।

भगवान करे जिसका बेटा हो, उसे मिल जाए। हमें तो कोई औलाद ईश्वर ने दी ही नहीं। लेकिन वह लड़का कहीं गलत हाथ में पड़ गया तो न जाने क्या हो?आजकल सुना तो है कि बच्चों के साथ क्या–क्या होता है। चम्पक स्वयं को पहचान न सका। ट्रेन में इंजन लग चुका था। एक घंटा हो चुका था। ट्रेन अपनी रफ्तार पकड़ी। उसी रात माँ बिस्तर से उठी थी। उसे लगा बेटा घर आया है। लेकिन ट्रेन के आगे बढ़ते ही अचानक माँ फिर बिस्तर पर लेट गयी। उसकी आस अब खत्म हो चुकी थी। वह मर चुकी थी।

शहनाई

वह किसी सूखी नदी के तल में जाकर
अपनी शहनाई को फूँककर बजाता है
अपने मुँह को नई ताकत देता हुआ

बस मैं ही सुनता हूँ
इस शहनाई की आवाज़
जिसका अर्थ था बचे रहो पानी
मेरी विवशता को मेरी कायरता को
दूर कहीं बहा ले जाने के लिए

शहनाई बजानेवाला जब इस वाद्ययंत्र को
बजाता है तल्लीन मेरे जीवन को नया गान देता
मैं गुनाहगारों के रोज़नामचे से गुनाहों को मिटाता हूँ।

उनके गुनाहों का फ़ैसला आदतन
सदियों पहले किया जा चुका होता है
इसलिए कि उनकी ख्वाहिशें अनाज बचाने में
क़त्ल की जा चुकी होती हैं असंख्य बार

तब भी शहनाई बजानेवाला
शहनाई बजाता है
पानी को अनाज को
बचाए रखने के लिए
अपने गुनाहों में और
इज़ाफ़ा करता हुआ।

शहंशाह आलम,
हुसैन कॉलोनी, फुलवारीशरीफ,
पटना, मो0 9835417537

2. काया प्रवेश

उसके सुख में
उसके दुख में
उसके जलकुंड में
उसके देहकुंड में
उसकी स्थितियों में
उसकी गतियों में
उसके रहस्यों में
उसकी छायाओं में
उसके तहों में

उसकी बाहों में
प्रवेश कर रही थी
पूरी तरह तल्लीन
पूरी तरह समृद्ध
जिसे सबने देखा
जिसे सबने सुना
जिसे सबने गुना
मेरी ही काया का प्रवेश
मेरी ही छाया का प्रवेश।
उसी के प्रदेश में।

कहानी

कामयाबी

डॉ. मो. परवेज
बरहपुरा उत्तरटोला, भागलपुर
मो.–7870304445

आज बेरोजगारी दुनिया में इतनी बढ़ गयी है कि हर आम व खास परेशानी से दो चार है। अगर कोई सरकारी नौकरी आती भी है तो लाखों की संख्या में आवेदन आते हैं और वह भी वक्त पर नौकरी नहीं मिलती–ऐसा लगने लगता है कि मानो पाँच वर्षीय योजना में चला गया हो। यही कुछ सोचकर अहमद ने एल.एल.बी. में दाखिला लिया था। वक्त का तो अपना पर होता है दुख हो या सुख अपनी ही रफ्तार से चलता है। देखते ही देखते अहमद ने एल.एल.बी. पास किया और सोचने लगा कि, एक बार कचहरी जाने का मौका मिला था। वहाँ तो बहुत भीड़ रहती है, वकीलों की सच–झूठ की दुकानें खुली रहती है, मानो कचहरी में हस्र का मैदान जैसा मंजर हो, सब अपने–अपने में परेशान दिखाई दे रहा हो, बड़े–बूढ़े, औरतें बच्चे सभी इधर से उधर दौड़ भाग कर रहे हों। यही सब सोच ही रहा था कि दरवाजे पर दस्तक हुई।

कौन?

मैं हूँ नौशाद, बाहर से आवाज आई। दरवाजा खुलते ही नौशाद ने हाथ मिलाते हुए कहा–मुबारक हो, आज तुम वकील बन गये। उधर इबलीस भी मुस्कुरा रहा होगा कि चलो आज फिर मैं साहबें औलाद हो गया, दोनों मुस्कुराने लगे।

अहमद ने नौशाद से पूछा–क्या खाओगे?नौशाद ने तुरंत कहा–अरे, नहीं मैं तो खुद तुम्हारे लिये मिठाई लेकर आया हूँ। गाड़ी में रखा है, लेकर आता हूँ।

नौशाद ने अहमद से पूछा–आगे क्या इरादा है?

अहमद कहने लगा–तुम्हारे आने से पहले मैं यही सोच रहा था कि कचहरी जाकर कोर्ट में वकालत शुरू करूँ।

यह सुनते ही नौशाद ने कहा–इसमें सोचना क्या है, तुमको कोर्ट में वकालत करनी है और साथ में जज के लिए तैयारी भी करनी है, ताकि आगे चलकर तुम जज बन जाओ। नौशाद ने अहमद का हौसला बढ़ाने की कोशिश की।

अहमद ने कहा–तुम कह रहे हो तो कुछ दिनों के बाद कोर्ट जाना शुरू करूँगा।

अहमद और नौशाद बचपन के अच्छे दोस्त थे और दोनों एक साथ ही क्लास में पढ़ते थे। नौशाद के वालिद की दुकान थी। वालिद के मरने के बाद नौशाद को दुकान में रहना पड़ा, जिसकी वजह से उसने अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ दी, लेकिन दोनों दोस्त हमेशा एक दूसरे के सुख–दुख में शामिल रहते थे।

नौशाद के जाने के बाद अहमद के दिल में उमंगें बढ़ गयीं और वह भी दिन आ गया, जब अहमद वकालत करने कोर्ट पहुँच गया। एक जाननेवाले सिनियर वकील हनीफ साहब से जुड़ गये। हनीफ साहब अच्छे वकील के साथ इच्छे इंसान भी थे। अहमद ने सुन रखा था कि हनीफ साहब अपने जूनियर वकील को सिखाते भी हैं।

एक दिन हनीफ साहब और अहमद दोनों अपने टेबुल पर बैठे थे, तभी उन्होंने अहमद से कहा कि तुम नये वकील हो, तुम्हें बहुत मेहनत करनी होगी, शर्म और हया को घर पर रखकर आना है। यहाँ रोजाना आओगे तो कुछ न कुछ सीखकर ही जाओगे, यहाँ वकीलों की बहुत भीड़ है, जितनी मेहनत करोगे अच्छे मशहूर वकील बनोगे, यहाँ किसी को नहीं सिखाता, खुद से सीखना होता है, तुम नये हो तुम्हारे जानने वाले वकील पहले से होंगे, उसको तुम्हारा वकील बनकर आना अच्छा नहीं लगेगा, कुछ लोग तुमसे भी कोर्ट का काम करायेंगे और यह भी याद रखो अपने सीनियर की इज्जत में कमी नहीं करना तुमसे पहले भी कई नये वकील आये और फिर कुछ दिनों के बाद नजर नहीं आए। अगर रोजाना आते रहोगे, तो एक दिन इसी कोर्ट में लोग तुम्हें सलाम भी करेंगे, एक और बात याद रखो अगर अपने सीनियर वकील से कुछ सीखना हो तो धोखे से यह गलती नहीं करना, अपने सीनियर वकील के सामने ब्सपदज से बड़ी रकम नहीं लेना। सीनियर वकील को कई दिनों तक नींद नहीं आएगी और तुम्हें सिखाने की कोशिश नहीं करेगा। अहमद ने सारी बातें सुनकर जी सर कहा।

अभी कुछ ही दिन गुजरे थे कि अहमद रोज की तरह अपनी टेबुल पर पहुँचा तो देखा कि पहले से कुछ लोग बैठे हुए हैं और हनीफ साहब उसने जमानत की मामले में बातें कर रहे हैं। अहमद सलाम करते हुए अपनी कुर्सी पर बैठ गया। अभी चंद मिनट ही गुजरे थे कि हनीफ साहब का हुक्म नाजिल हुआ–यह लो फाइल जिला जज के यहाँ जाओ, आज इस मुकदमा की तारीख है, ऐसे संगीन मामले में जिला जज जमानत नहीं देते इसलिए तुम ही जाओ। अहमद ने हिचकिचाते हुए कहा–सर! इस फाइल के बारे में तो मैं कुछ जानता भी नहीं हूँ, क्या कहूँगा?

तुम्हें कुछ चवपदजे बताता हूँ, बाकी जो तुम्हारी समझ में आये कह देना, एक नजर तुम भी पढ़ लो।

अहमद ने फाइल उठाया और जिला जज के इजलास की तरफ चल दिया। जाते हुए अहमद ने सुना कि हनीफ साहब ब्सपदजे से कह रहे थे हाई कोर्ट में जमानत में एक लाख रुपये खर्च होंगे और अभी आपको पचास हजार रुपये देने होंगे। ब्सपदज ने कुछ नोट की गद्दी निकालकर हनीफ साहब को दे रहे थे और कह रहे थे कि बाकी जमानत मिलने के बाद....।

अहमद जिला जज के इजलास के करीब पहुँचा तो पहले से बहुत भीड़ थी। हर आदमी परेशान, पुलिस सबों को किनारे रहने को कह रही थीं। एक बूढ़ी औरत अपने वकील से कह रही थी मेरा बेटा बेकसूर है, उसे गाँव के दबंगों ने फँसा दिया है। दूसरी तरफ एक औरत रोते हुए कह रही थी कि वकील साहब मेरे शौहर को जमानत दिलवा दीजिए। आज मैं अपने जेवर गिरवी रखकर आपको आपकी फीस दी है। वकील साहब दिलासा देते हुए कह रहे थे–रोने से क्या फायदा, खुदा से दुआ करो, तुम्हारे शौहर को आज जमानत मिल जाए। एक कविता की कुछ पंक्ति याद आने लगी, जो कभी मोहल्ले की लाइब्रेरी में पढ़ी थी–

''भले डाँट घर में तु बीबी की खाना
मगर मेरे बेटे कचहरी न जाना। कचहरी हमारी तुम्हारी नहीं है
वहाँ कोई रिश्तेदारी नहीं है, कचहरी की महिमा निराली है बेटे
कचहरी वकीलों की थाली है, पुलिस की छोटी साली है बेटे!''

इजलास के अंदर जाने के बाद घबराहट उसे महसूस होने लगी। एक तो आज पहली बार इजलास में बोलना है और दूसरी यह कि कई सीनियर और मशहूर वकीलों की भीड़। अहमद खाली कुर्सी देखकर बैठ गया। बगल की कुर्सी पर लगभग साठ साल के सीनियर वकील बैठे थे। कुछ वकील उनको इजलास के अंदर पैसे दे रहे थे, अहमद को देखकर अजीब लगा। एक हम उम्र वकील से पूछा–''भाई! कौन वकील साहब हैं, जो दूसरे वकील साहब से रुपये

कहानी

मर्यादा का मान

मीनाक्षी छाजेड
कोलकाता–700040
मो.–9432206887

बीस मिनट से मेट्रो स्टेशन पर खड़े–खड़े स्पंदन के पैर और आँखें दोनों अपनी शक्ति खो रहे थे। पता नहीं, फिर आज कौन से स्टेशन पर किस मुए ने अपनी जिंदगी शेष कर ली, जो आज से मेट्रो आने में लेट हो रही है–स्पंदन मन ही मन बुदबुदाया। आजकल आए दिन ही 'सुसाइड' के केस हो रहे हैं। लोगों का जीवन कितना तनावग्रसित हो गया है। स्कूली बच्चों में पढ़ाई, मार्क्स और सिक्योर फ्यूचर को लेकर तनाव, ऑफिस में काम के बोझ के साथ–साथ कलीग्स के साथ कम्पीटिशन का माहौल, ईगो जीवन में फ्रस्ट्रेशन इतना ज्यादा हावी हो गया है कि एक सामान्य, सहज, सरल जीवन जीना व्यक्ति के लिए दुर्लभ होता जा रहा है। 'सर्वाइवल आफ द फिटिस्ट' का प्राकृतिक नियम अब जकड़न बनता जा रहा है और वही जीवन में घुटन पैदा करता है।

अचानक मेट्रो की तेज सीटी से स्पंदन की तन्द्रा भंग हुई और वह तेज–तेज कदमों से आती मेट्रो की ओर बढ़ा, ताकि रुकते ही वहाँ से अंदर प्रवेश करके सीट पर बैठ सके, नहीं तो पता नहीं, कबतक खड़े–खड़े प्रतीक्षा करनी पड़े और कहीं ऐसा ना हो, मंजिल आते–आते सारा रास्ता खड़े–खड़े ही तय करना पड़े।

आज मेट्रो हर दिन की तरह लोगों के झुंड से भरी हुई नहीं थी। बैठने का स्थान पाकर स्पंदन ने राहत की साँस ली। मेट्रो भी ए.सी वाली थी। आज तो घर पहुँचते–पहुँचते पूरी एनर्जी सेव रहेगी–मन ही मन उसने सोचा। जब वह पाँच साल का छोटा बच्चा था, तब वह अपने माता–पिता के साथ उत्तरप्रदेश के एक छोटे कस्बे 'नवाबगंज' में रहा करता था। छोटे क्षेत्र में अपनों के अलावा पूरा कस्बा भी अपना ही हुआ करता था। कोई चाचा, कोई ताऊ और कोई मौसा, अपनी–अपनी छवि में सबकी हिस्सेदारी बँटी हुई होती थी।

स्पंदन के पिता के औरतों के 'अंडरगार्मेंट्स' की दुकान थी। उस वक्त साइज और नाप के कपड़े बचने का रिवाज नहीं हुआ करता था, क्योंकि तहजीब के अपने पैमाने हुआ करते थे और औरतें मर्दों से घूँघट रखा करती थीं, लेकिन जरूरत की वस्तुएँ खरीदना भी उनकी मजबूरी थी। वे दुकान पर जाती थीं, पर मूक–बधिर की तरह मथा हिलाकर ही अपनी बात को बता पाती थी। जब किसी औरत को अंतःवस्त्र खरीदना होता तो पिताजी उनसे पूछते–'कितने बच्चे?' वह अंगुली से एक या दो का इशारा करके बताती और पिताजी उसी के आधार पर साइज निकालकर पकड़ा देते। ग्रामीण औरतें भले ही अनपढ़ थीं, लेकिन उनमें चालाकी और चकमा देने की वृत्ति पनपी हुई थी। वे मौका देखकर वस्त्र पहनकर या छुपाकर चल बन पड़ती थी। पिताजी पाँच साल के स्पंदन को उनके साथ अंदर भेजते ताकि वह उन औरतों पर निगाह रख सके और उन औरतों की चोरी की हरकत कामयाब ना हो सके।

स्पंदन पाँच भाई, बहन में सबसे बड़ा था। छोटे क्षेत्र का जीवन वहाँ की लोक संस्कृति और आचार–व्यवहार से बहुत प्रभवित होता है। नवाबगंज में रात को मंदिरों में नृत्य–गायन हुआ करता था। मंदिर के प्रांगण में मंच सज्जित होता। उसपर कस्बे के सरपंच, बड़े लोगों का पट्ट लगता और नृत्य–गायन की प्रस्तुतियाँ होतीं। वे सुकोमल कन्याएँ जनता के सामने अपनी नृत्यकला प्रस्तुत करतीं। स्पंदन के दादाजी का नवाबगंज में अच्छा रुतवा था। वे मंच पर लगे पट्ट पर आसीन होते और नृत्यांगनाओं की कला का अवलोकन करते। पिताजी जबसे मंदिर के प्रांगण में जाने लगे, दादाजी पट्ट पर बैठना छोड़ दिया। धीरे–धीरे स्पंदन भी बड़ा हो रहा था। जवानी की दहलीज पर कदम रखते–रखते उसके कदम भी मंदिर के प्रांगण की ओर चल पड़े। बाप–बेटे की नजर एकाकार हुई और उसी दिन से पिताजी ने प्रांगण में जाना छोड़ दिया। पीढ़ी के बीच का संकोच और मर्यादा का आवरण कहीं ढग ना जाए, यही सोच पिताजी को खुद पर काबू और अनुशासन की सजगता का नाद संभाल गया। स्पंदन चढ़ती जवानी की पीग पर था। अपने यार–दोस्तों के साथ जवान दिल की धड़कन को गिनना उसे बड़ा सुहाता। उसके जीवन के ये नए अनुभव थे। जब रात को प्रांगण में नृत्य की तैयारियाँ होतीं, तो स्पंदन और उसके दोस्तों की टोली मोर्चा जमाकर सबसे आगे की पंक्ति में बैठ जाते और नृत्य व नृत्य करनेवाली की एक–एक अदा को भाव–भंगिमा को बिना पलक झपकाये इस तरह देखते, मानो रामायण और महाभारत का जीवंत दृश्य उनकी आँखों के सामने चलचित्र की भाँति चल रहा हो। पारो, रानी, बन्नो, शन्नो, कजरी और न जाने कितनी हसीन नृत्यांगनाओं की एक–एक अदा उनकी आँखों में समा चुकी थी और उनकी एक–एक भाव– भंगिमाओं में पूरी टोली ऐसी डूब जाती, मानो तूफान भरे समुद्र में गोता लगाकर गहराई को मापने की होड़ लग गयी हो। पारो ने मुझे ऐसे कनखियों से देखा–''हाय! बिजली गिरा गयी मुई मुझपर। सारी रात उसी बिजली की तड़पन में आहें भरते–भरते निकल गयी। निगोड़ी कातिल अदा इस कदर घायल कर देगी। रह–रहकर उठती बिजलियाँ पूरे शरीर में विद्युतीय तरंग प्रवाहित किये जा रही थीं। हाय! वे नजरें ऐसा अंदर तक खंजर की तरह भोंक गयी कि कोई दवा–दारू कुछ भी काम नहीं करेगी।''

वह सनासनहट रूह में इस कदर बैठ गयी कि लंबे समय तक वहीं घर करके रचबस गयी। स्पंदन और उसके यार–दोस्तों की टोली जब आपस में मिलते, ठंढी साँसें भरते और उस अहसास को दोहराते रहते। यौवन की दहलीज पर खड़े सुरभित जीवन की चपलता और चंचलता यादों के भँवर में फँसे हुए उससे कभी मुक्त होने की चाह भी नहीं रखते थे। वे सुखद–सपनीली यादें उन्हें मीठी–मीठी हिलोरें दिये जाती थीं।

छोटे भाई कब बे–वक्त बड़े हो गये। एक दिन सहसा उन्हें प्रांगण में देखकर अहसास हुआ। स्पंदन को लगा, अब उसका भी वक्त आ गया, प्रांगण में आने के समय में थोड़ी तब्दीली का। दादाजी, पिताजी ने जो संकोच और मर्यादा की नींव रखी थी और एक आवरण से ढकते हुए मान की गरिमा को बनाए रखा था। आज स्पंदन को भी वही मान की गरिमा को बनाए रखना था। स्पंदन और उसके दोस्तों की टोली ने अपने वक्त को इस तरह प्रांगण के साथ साझा कर लिया कि उसे छोटे भाइयों के साथ–साथ उसकी भी मान की मर्यादा अक्षुण्ण बनी रहे।

सुसंभाव्य
प्रकाशन

कार्यालय
भवानी कॉम्पलेक्स, पटल बाबू रोड
गुरुद्वारा गली के सामने, भागलपुर (बिहार)
Mob.: 9931240303